अविसंवादीश्रीसर्वज्ञप्रवचनाय नमः

लघुपर्युषणानिर्णयस्य

प्रथमाङ्कः।

कर्ता

परम पूज्य उपाध्यायजी श्री १००८ श्री श्रीसुमति-
सागरजी महाराजके लघुशिष्य
मुनि-मणिसागर

प्रकाशक—हीरालाल जैनी वीकानेर वाले
हाल मुम्बई,
मुम्बई—निर्णयसागर प्रेसमे छपवाया।

[प्रथमवार २००० प्रति]

वीरनिर्वाण २४४३, विक्रम संवत् १९७४, सन १९१८

किंमत सत्य अंगीकार करना

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya-Sagar Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay

Published by Hiralaljee Jaini Bikanerwalla,
Lalabag, Panjarpole-BOMBAY

अर्हम्

आवश्यकीय निवेदन ?

पर्युषणापर्व संबंधी श्रीतपगच्छके मुनिमंडलसे विनती.



आज कल वर्तमानमें सब कोई कहतेहैं, समय बदलता जाताहै, आपस्में खंडन मंडन करना, राग द्वेष बढाना, निंदा इर्षासे कुसंप खडा करना, आपस्में लडना, लोगोंकों तमासे दिखाना, और शासनकी हिलना कराना, यह सर्वथा अनुचितहै, किंतु-संपसे रहना, शांततासे हिलमिल कर धर्मकार्य करना, दूसरोंकों करना और शासनकी उन्नतिके कार्योंमें कटि बद्ध होना, इन्हीं बातोंकी खास आवश्यकताहै, जिसपरभी पर्युपणा जैसे शांतिके पर्वमें सब जीवोंसे और विशेप करके जैनी भाईयोंसे मैत्रीभाव पूर्वक वर्ताव करना चाहिये, जिसके बदले हमारे तपगच्छके मुनि महाराज पर्युपणा पर्वके व्याख्यानमें हर वर्ष गांम गांमप्रति सैकडों जगह श्रीकल्पसूत्र वांचनेके समय आपस्में गच्छोंके झगडोंका वाद विवाद खडा करते हैं, और खंडन मंडन करने लग जातेहैं, उससे जिनवाणी सुननेकों आने वाले आत्मार्थी मध्यस्थ भव्य जीवोंकों बहुत अनुचित मालूम पडताहै, कल्पसूत्रकी तपगच्छीय आधुनिक टीकाओंमें दो जगहों पर गच्छोंका झगडा बढानेके लिये लिखाहै, जिसमें प्रथमही कल्पसूत्र वांचनेका शुरु करनेके समय श्रीमहावीरस्वामीके पांच छ कल्याणकों संबंधी और दूसरा अधिकमास आवे तब पर्युपणा करने संबंधी। जब इन बातोंका सभाके बीचमें हमारे तपगच्छक मुनि महाराज खंडन मंडन चलातेहैं, तब पर्वदिनोंमें धर्मका आराधन करनेको उपाश्रय, धर्मशालामें आनेवाले कितनेही भव्यजीवोंके दिलमें बडा रंज पैदा होताहै, और आपस्में राग-द्वेप, निंदा-इर्षासे, कुसंप कदाग्रह होजाताहै, उससे धर्म आराध-

नमें अंतराय होजातीहै, बडेही अफसोसकी बातहै—तपगच्छके मुनि-महाराज और आगेवान् श्रावक संप करना-संप करना कहतेहैं, मगर पर्वके दिनोंमेंभी शांतिसे धर्मकार्य नहीं करते, आपस्का गच्छोंका झगडा लिये बैठतेहैं। तत्त्व दृष्टिसे विचार करें तो पर्वदिनोंमें ऐसा झगडा जमानाके प्रतिकूल और शास्त्रोंके भी विरुद्धहै, इसलिये तपगच्छके मुनिमहाराजोंको बहुत आग्रह पूर्वक विनती करनेमें आतीहै, कि-आपलोग संप करना संप करना कहतेहैं, मगर पर्युषणा जैसे शांतिके दिनोंमें सभाके बीचमें गच्छोंका झगडा आगे करके खंडन मंडन करना यह किस घरका न्यायहै, बोलतेहैं क्या, और करतेहैं क्या, जैसा बोले, दूसरोंको उपदेश करें वैसाही वर्ताव करना चाहिये समयको विचारो गच्छोंके झगडोंको पर्वके दिनोंमें आगे लाना छोडो, ऐसे कदाग्रह कुसंपसेही शासनकी यह दशा हो रहीहै, इनका विचार करो, समय बदलाहै, इसलिये मेरा सो सच्चा दूसरे सब झूठे ऐसी मान्यता अब बदलती जातीहै, और सच्चा सो मेरा यही भावना आत्मार्थी समय सूचक विवेकी पुरुषोंके दिलकी देखी जातीहै, अब अंधश्रद्धा और गच्छकी रूढी परंपरा पकड बैठने वाले नहींहैं, संपके हीमायती, सत्यके परीक्षक, न्यायको और शास्त्र प्रमाणको, युक्तिको ग्रहण करना सब कोई चाहतेहैं, इसलिये

"दिनगणनायां तु अधिकमास कालचूला इति विवक्षणाद् दिनाना पञ्चाशद् एव, कुतोऽशीतिवार्तापि"

यह वाक्य श्रीविनय विजयोपाध्यायजी कृत सुबोधिका वृत्ति, श्रीवल्लभ विजयजीने शुद्ध करके छपवाया है उसके पृष्ठ १७० की दूसरी पुटी पंक्ति ७ वीं काटै,

अर्थात्—अधिकमासको कालचूला कहनेसे उसके ३० दिन गिनतीमें छोड देना, और आषाढ चौमासीसे दूसरे भाद्रमें पर्युषणा करनेसे ८० दिन होतेहैं, जिसके ५० दिन कहना, और ८० दिन हुए ऐसी वार्ताभी न करना, और दो आश्विन होवें तब पर्युषणाके पिछाडी कार्त्तिकतक १०० दिन होने उसमेंभी कालचूलाके नामसे ३० दिन

उडा कर, १०० दिनके बदले ७० दिन कहना, । ऐसी शास्त्रविरुद्ध क- ल्पित बात कौन आत्मार्थी मान सकताहै, और फिर अपनी कल्पनासे

"अधिकमासः किं काकेन भक्षितः? किं वा तस्मिन् मासे पापं न लगति? उत बुभुक्षा न लगति? इत्यादि उपहसन् मा स्वकीयं ग्रहिलत्वं प्रकटय" इति सु० वृ० पृ० २७२ पु० १ पं० ९।१० तक

अर्थात्-अधिकमासमें क्या पाप नहीं लगता? अथवा उस महिनेमें क्या भूँख नहीं लगती? इत्यादि पूर्वपक्ष उठाकर फिर उत्तर पक्षमें अधिकमासको माननेवाले (तीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्य वगैरह) को 'ग्रहिलत्वं' पागल कहतेहैं, अफसोस पर्युषणा जैसे धर्म ध्यान करनेके शांतिके दिनोंमें हमारे तपगच्छके मुनि महाराज व्याख्यानमें अपना पक्ष स्थापना करनेके लिये अधिकमास माननेवाले सब गच्छवालोंकों पागल ठहरातेहैं, ऐसे वचनोंसे कुसंप कदाग्रह होकर पायमाली होवे उसमें तो क्या ही कहना, मगर शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा करनेसे अनंत तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी आशातना होकर संसार वृद्धिका महान् अनर्थ होताहै, क्योंकि अनादि कालसे अनंत तीर्थंकर महाराजोंने अधिकमासको गिनतीमें मानाहै, इसका खुलासा इस ग्रंथके पढनेसे स्वयं मालूम होजावेगा और निशीथ चूर्णिमेंभी अधिक मासको वर्षके शिखररूप विशेष शोभारूप कालचूलाकी अच्छी उत्तम ओपमा दी है, और गिनतीमें भी प्रमाण मानाहै, इसलिये कालचूलाके नामसे केशांके जैसी तुच्छ ओपमा देकर गिनतीमें लेना निषेध करते हैं, सो भी शास्त्रविरुद्ध है, हमारे तपगच्छके मुनि महाराजोंकी ऐसी शास्त्रविरुद्ध और अनुचित बातें मान बैठनेका जमाना चला गयाहै, मगर कितनेही हठवादी दृष्टिरागी गच्छके पक्षपाती होकर जिनाज्ञाविरुद्ध बातें भी पकडे बैठें तो हम नहीं कह सकते।

"तथा नव कल्पविहारादि लोकोत्तरकार्येषु, आसाढे मासे दुप्पया इत्यादि सूर्याचारे, लोकेऽपि दीपालिका, अक्षयतृतीयादिपर्वसु, धन-कलत्रादिषु च अधिकमासो न गण्यते, तदपि त्वं जानासि अन्यच्च सर्वाणि शुभकार्याणि अभिवर्द्धिते मासे नपुंसक इति कृत्वा

ज्योति शास्त्रे निषिद्धानि, अतएव आस्ताम् अन्योऽभिवर्द्धितो भाद्रपद-वृद्धौ प्रथमो भाद्रपदोपि अप्रमाणं एव, यथा—चतुर्दशीवृद्धौ प्रथमां चतुर्दशीं अवगण्य द्वितीयायां चतुर्दश्यां पाक्षिकं कृत्यं क्रियते, तथाऽत्रापि। एवं तर्हि अप्रमाणे मासे देवपूजा-मुनिदान-आवश्यकादि कार्य अपि न कार्य, इति-अपि वक्तुं माधरोष्ठ चपलय, यतो यानि हि दिनप्रतिबद्धानि देवपूजा-मुनिदानादि कृत्यानि तानि तु प्रतिदिन-कर्तव्यानि एव, यानि च संध्यादिसमयप्रतिबद्धानि आवश्यकादीनि तान्यपि यं कञ्चन संध्यादि समय प्राप्य कर्तव्यानि एव, यानि तु भाद्रपदादि मासप्रतिबद्धानि तानि तु तद्द्वयसंभवे कस्मिन् क्रियंते, इति विचारे प्रथमं अवगण्य द्वितीये क्रियते, इति सम्यग् विचारय, तथा च पश्य अचेतना वनस्पतयोपि अधिकमासं नांगीकुर्वंते, येन अधिकमासे प्रथम परितज्य द्वितीय एव मासे पुष्पंति-इत्यादि" सु० पृ० २७१ दूसरी पुठी पं० २ से पृ० २७२ प्र० पु० पं० १ तक।

यह सब बातें भोले भद्र दृष्टिरागी बालजीवोंको अपने कल्पित पक्षमें लानेके लिये सर्वथा जैनागम विरुद्ध हैं, क्या अधिकमास होवे तब साधु मुनिराज दो महिनोंके ४ पक्षोंके ६० दिनतक, १ गावमें, १ जगह ठहर कर हमने यहापर १ मास कल्प किया, १ महिना ठहरे, ऐसा प्रत्यक्ष मिथ्या कह सकते हैं? कभी नहीं, और १८३ वे दिनमें दक्षिणायनसे उत्तरायनमे सूर्य जाताहै, उसमें अधिकमास आवे तब क्या ३० दिन तक सूर्य विश्राम लेताहै, ठहरजाताहै, ३० दिनोंके ३० माडले नहीं करता? सो कभी हुआ नहीं, होगा नहीं, और हो सकताभी नहीं, अधिकमासके ३० दिनोंमें ३० माडले प्रत्यक्षमें करता है, और उसकी गिनतीसेही १८३ वें दिने दक्षिणायनसे उत्तरायन और उत्तरायनसे दक्षिणायन अनादि काल हुआ होता रहताहै,

और पर्युषणा मास प्रतिबद्ध नहीं किंतु दिनप्रति बद्धहै और मुहूर्त्त देखके आगे पीछे करनेके नहीं किंतु विना मुहूर्त्त ही अनादि मर्यादा मुजब वर्षाऋतुकी शुरुयातसे अवश्यही दिनोंकी गिनती पूर्वक करनेका कहाहै, इसलिये वर्तमानिक श्रावणवृद्धिसे दूसरा श्रावण हो, अथवा

दो भाद्र हो तो पहिला भाद्र, मगर दिनोंकी गिनतीसे ५० वें दिन अवश्य पर्युषणा करना चाहिये, जिसपरभी मास प्रतिबद्ध दीवाली वगैरह लौकिक पर्वका और नवीन स्त्री गृहमें प्रवेश करने वगैरह मुहूर्त्तवाले कार्योंका दृष्टांत दिखाकर अधिक मासका निषेध करना और दूसरे भाद्रमें ८० वें दिन पर्युषणा करनेका ठहराना सोभी शास्त्र विरुद्धहै,

और जैसे ब्रह्मचारी पुरुषको देखके व्यभिचारिणीस्त्री उसको नपुंसक कहके निंदा करें तो अनुचित, तैसेही तीर्थंकर महाराजोंका गिनतीमें प्रमाण किया हुआ, ऐसा निर्दूषण अधिकमासको नपुंसक कहके धर्मकार्योंमें अंतरायभूत निंदा करना सर्वथा अनुचितहै।

और दो भाद्रपद होनेसे प्रथम भाद्रपदको अप्रमाण ठहरा कर दूसरे भाद्रपदमें पर्युषणा करनेका ठहराया, मगर दूसरे भाद्रमें ८० दिन होते हैं, उससे जिनाज्ञाका भंग होताहै, इसका विचार न किया क्योंकि पर्युषणा करनेमें अधिक मासके दिन किसी तरहसेभी बाधा कारक नहीं होसकते, अधिक मास आनेसे पर्युषणा आगे पीछे नहीं होसकते, क्योंकि दिनोंकी गिनतीका नियम होनेसे, जहां व्यवहारसे दिनोंकी गिनती पूरी होवे, वहांही पर्युषणा होसकतेहैं इसलिये पर्युषणा करनेमें अधिकमासका झगडा बीचमें लाना सर्वथा अनुचितहै.

और अचेतन वनस्पतियेंभी अधिकमासको अंगीकार नहीं करती, उससे अधिकमास आवे तब पहिले महिनेको छोडकर दूसरेमें पुष्पवतीयें होतीहैं, ऐसा लिखना और कहना भी कीतना असंभवितहै, क्या आपलोगोंके जैसा वनस्पतियोंमेंभी मन वचनका उपयोगहै, सो पहिलेको छोडकर दूसरेमें पुष्पवती होतीहैं, तथा अधिकमासमें अंग्रेजी और मुसलमानी ३० तारीखोंके ३० दिनोंमें, कीसी बगीचेमें या कीसी नगरमें पुष्प फल देखनेमें नहीं आये ऐसा तो कोईभी नहीं कह सकता इसलिये शास्त्रकारोंके अभिप्रायको समझे बिना ऐसी अनुचित बातें कहनसे तो अपना कल्पित पक्ष कदापि सत्य नहीं ठहर सकता.

और आप लोगोंका यह तो एक प्रकारका हठवादही कहा जावे, अधिकमासके ३० दिनोंमें देवपूजन, गुरुवंदन, सामायिक, प्रतिक्रमण,

तप और संयमका आराधन करना, उसकी गिनतीभी करना, १५ दिन होनेसे पाक्षिकभी करना, फिर उन दिनोंको गिनतीमें लेनेका निवारण भी करना, ऐसी अनुचित अन्यायकी बातोंमें खींचातान करना, और व्यर्थ झगडा करना कौन विवेकी अच्छा समझेगा ॥

और दो चौदश होनेका लिखा, उससे यही सिद्ध होताहै, कि-श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्योंके समय दो चौदश होतीथी सो मानतेथे, मगर वर्तमानिक हमारे तपगच्छके मुनि महाराज पहिली चौदशको तेरस बनातेहैं, उससे गृहस्थी लोग चौदशको तेरस समझ कर-कुशील, रात्रिभोजन, हरेशाक, वगैरहमें अनेक प्रकारसे सूक्ष्म बादर जीवोंकी हिंसा करतेहैं, उसके कारणभूत होकर आपनी आत्माको संयम बाधाका हेतु करना उचित नहींहै, यह प्रवृत्ति अभी थोटे वर्षोंसे जैन पंचागके नामसे चलपडीहै, प्राचीन शास्त्रोंमें दो चौदशको दो तेरस बनाना कीसी जगह नहीं लिखा, अनेक जीवोंकी हिंसादि आश्रवकी हेतुभूत ऐसी कल्पित प्रवृत्तिको खास सुधारनेकी आवश्यकताहै, इसके संबंधमें फिर अवसरपर अलग लिखा जावेगा

और अधिकमासके ३० दिन कालचूलाके नामसे निषेध करना १, अधिकमासमें शुभकार्य न होवे तो पर्युषणा कैसे होसके ? २, दूसरे भाद्रमें पर्युषणा करना ३, मासवृद्धि होनेपरभी पर्युषणाके पिछाडी ७० दिन रहना ४, जैन शास्त्रोंमें अधिकमासको नहीं गिना ५, इत्यादि शास्त्र विरुद्ध कल्पित बातोंका उत्तर संक्षेपसे थोडासा इस ग्रंथमें लिखनेमें आयाहै, (और विशेष विस्तारसे सब तरहकी शकाओंका निवारण पूर्वक हमारा बनाया "बृहत्पर्युषणानिर्णय." नामा ग्रथमें सब खुलासा लिखा गयाहै,उसके पढनेसे विवेकी न्यायके अभिलाषी सज्जन गणको सत्य असत्यकी स्वय मालूम हो जावेगा !) इसको पढ कर न्याय दृष्टिसे विचारना, गच्छके पक्षपात दृष्टिरागको छोडना, जिनाज्ञानुसार सत्यको अंगीकार करना, दूसरोंको कराना, और शांततासे मैत्री भाव पूर्वक हिलमिलकर धर्म ध्यान करना, दूसरोंको कराना, और शासनकी उन्नतिके कार्योंमें लगना, उसमेंही शास-

नकी प्रभावना और अपना दूसरोंका कल्याणहै, मगर पर्युषणा जैसे शांतिके पर्वमें मिथ्या खंडन मंडन करनेसे पर्वकी विराधना, कुसंप, शासनकी हिलना और संसारका कारण होताहै, ऐसा समय सूचक पुण्यवान आत्मार्थियोंकों करना उचित नहींहै।

और जैनी नाम धारण करनेवाले सव कोई एक होजाना, यह इस कालमें वहुत मुश्किलहै, और असंभवितहै, पहिले बडे बडे पूर्वाचार्य हो गये वो भी दुनियाके और गच्छोंके झगडोंकों मिटा कर सबकों एक करनेको समर्थ नहीं हुए, अभीतो गुरुकर्मे, हठवादी, वहुतहैं, सो सव एक कैसे होसके, मगर जिसने अपनी आत्माका कल्याण करनेको और परोपकार करनेको संयम अंगीकार किया होगा, वह तो लोकलज्जा और गच्छ पक्षकी परंपराका हठवाद और दृष्टिराग, छोड़कर शास्त्र प्रमाण मुजव अवश्यही सत्य ग्रहण करेगा॥

और कीतनेही कहतेहै, कि जैनी भाईयोंकों आपसमें खंडन मंडन करके नहीं लडना चाहिये, किंतु जैनशासनके शत्रुओंकों परास्त करनेमें समय लगाना चाहिये, मगर क्या किया जावे हमारे तपगच्छके मुनि महाराज अपने गच्छकी सुवोधिकादि टीका लेकर पर्युषणामें खंडनमंडन करतेहैं, उसको छोडानेके लिये और आपसमें संप सुख शांति होनेके लिये यह लेख प्रगट करनेमें आताहैं, परंतु हमारी तरफसे इस विषयमें पहिलेसे खंडन मंडनकी शुरुयात हमने नहीं करीहै, अभीसे भी हमारे तपगच्छके मुनि महाराज इस विषयमें पर्वके दिनोंमें खंडन मंडन करना छोड देवेगे तो हमेंभी ऐसे लेख प्रगट करनेकी कोई आवश्यकता नहींहै,

और कीतनेही कहतेहै, ५० वें दिन पर्युषणा करो तो क्या? और ८० वें दिन करो तो भी क्या? मगर शांतिसे पर्युषणा पर्वका आराधन करना, शुद्ध भावसे सव जीवोंकों खमाना, धर्म आराधन करना, वखेडेसे दूर रहना, यही अच्छाहै, इसपर मैरा इतनाही कहनाहै, कि— शांतिसे भावपूर्वक धर्म ध्यान करना अच्छाहै, मगर जिनाज्ञा मुजव करनेसेही निर्जराका हेतु और निर्वाण देनेवाला होताहै, और जिना-

ज्ञा विरुद्ध जमालि वगैरहोंने बहुत शांतिसे धर्म ध्यान कियाथा तो भी संसार बढाने वाला हुआ, इसलिये जिनाज्ञाकी प्रधानताहै, ५० वें दिनही अवश्य पर्युषणा करनेकी जिनाज्ञाहै, ५० वें दिनकी रात्रिको भी उल्लंघन करके ५१ वें दिनभी पर्युषणा करें तो आज्ञा उल्लंघन होतीहै, तो फिर ८० वें दिन पर्युषणा करना सो जिनाज्ञा कैसे होसकतीहै, और अनादि (अनंत) कालसे षट् (छ) द्रव्य जैन प्रवचनमें शाश्वते कहेहैं, उसमें जितना काल व्यतीत होवे उसमेंसे १ समय मात्रभी गिनतीमें नहीं छुट सकता, इसलिये राग द्वेष रहित जैनशासनमें अधिकमासके दिनोंको गिनती रहित करनेके लिये राग द्वेषका कारण करना सर्वथा अनुचितहै, जिनाज्ञा और जैनशास्त्र कीसीके घरके नहींहैं, सो तपगच्छवाले, करें वो खरतर गच्छवालोंको न करना, या खरतर गच्छवाले करे सो तपगच्छवालोंको न करना, यह अज्ञान दशा दूर होनी चाहिये, और परंपराका आग्रह छोड कर सत्य ग्रहण करना सबको उचितहै

इस वर्ष ७८ महिनोंसे, जैन पत्रमें, और जैन शासन पत्रमें, पर्युषणा कब करनेकी चर्चा चलरहीहै, और हमारे तपगच्छके मुनिमहाराज हरवर्ष पर्युषणामें खंडन मंडनके विवादकी चर्चा चलातेही रहते हैं, इसलिये हमको भी इस अवसर पर इतना लिखना पडाहै, यह लेख गच्छोंके बखेडे बढानेके इरादेसे नहीं, किंतु चलताहै उसको शांत करनेके लियेही लिखा गयाहै, खास मेरा यही उद्देश है, कि कीसी तरह यह बखेडा शांत होवे, और संघकी वृद्धि होकर शासनकी उन्नति होवे, इसी भावनासे यह लेख प्रगट करनेमें आताहै, यह लेख मुनि महाराजोंके लियेहै, श्रावकतो अपने गुरु कहें, और करें, वैसा करनेको लगजातेहैं, इस विवादमें श्रावकोंका कोई दोषभी नहींहै, इसलिये इस लेख पर कीसी श्रावकको नाराज न होना चाहिये, मगर पक्षपात छोडकर सत्यबातकी परीक्षा करना, और अपने गुरु मुनिमहाराजोंसे निर्णय करवाना, मगर रुढी मुजब चलते प्रवाहमें संशयरूप मिथ्यात्वमें पडना नहीं चाहिये, और साधु मुनि महाराजोंकोभी

कीसीको बुरा न मानना चाहिये किंतु पहिले अपनी भूलको देखना और समझ कर सुधार लेना, और पीछेसे इस लेखमें कोई मेरी भूल देखनेमें आवे तो मेरेको भी दिखाना, मैं अपनी भूल अवश्य सुधार लुंगा, आपका बडा उपकार मानुंगा और सत्य बात प्रगट करनेमें विलंब न करुंगा. आप लोग भी तत्त्वदृष्टिसे इस लेखको देखकर सत्यके पक्षपाती बनें,

और इसी तरह जब कल्पसूत्र बांचनेका शुरु करते हैं तब उस समय पहिलेही व्याख्यानमें श्रीमहावीर स्वामीका चरित्र कथन करते हुए, चौदह पूर्वधर श्रीभद्रबाहु स्वामीजीने "ते णं, काले णं, ते णं, समए णं, समणे भगवं महावीरे, पंच हत्थुत्तरे होत्था, तं जहा—हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भंवक्कंते । १ । हत्थुत्तराहिं गब्भाओ, गब्भं साहरिए । २ । हत्थुत्तराहिं जाए । ३ । हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं, पव्वइए । ४ । हत्थुत्तराहिं अणंते, अणुत्तरे, निव्वाघाए, निरावरणे, कसीणे, पडिपुन्ने, केवल वर नाण दंसणे समुपन्ने, । ५ । साइणा परिनिव्वुडे, भयवं । ६ । इस पाठमें श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामीके देवलोकसे च्यवन । १ । देवानंदाके गर्भसे दूसरे च्यवन रूप एक गर्भसे दूसरे गर्भमें जाना । २ । जन्म । ३ । दीक्षा ।४। केवल ज्ञानकी उत्पत्ति । ५ । यह पांच कल्याणक हत्थुत्तरा नक्षत्रमें कहे, और छट्ठा मोक्षगमन स्वाति नक्षत्रमें बतलाया ॥ ६ ॥ उपरके सूत्र पाठके इन छ कल्याणकोंका निषेध करनेके लिये, "निच्चैर्गोत्रविपाकरूपस्य, अतिनिंद्यस्य, आश्चर्यरूपस्य, गर्भापहारस्यापि, कल्याणककथनं, अनुचितम्" इत्यादि वचन कहकर वीरप्रभुकी निंदा करते हैं, सोभी आगम विरुद्ध है, और पर्युषणाके व्याख्यानमें, ऐसे शब्दोंसें, तीर्थंकर महाराज वीरप्रभुकी, निंदा श्रोताओंको सुनानेसे, अपनी संयम हानी, दुर्लभ बोधि, और भव वृद्धिके सिवाय अन्य क्या फल होगा, और स्थानांगसूत्रमें, तथा वृत्तिमें, आचारांगसूत्रमें, तथा उस सूत्रकी वृत्तिमें, आवश्यक निर्युक्तिमें, चूर्णिमें, पर्युषणा कल्पचूर्णिमें इत्यादि अनेक आगमोंमें, तथा उपरोक्त कल्पसूत्रमें, वीरप्रभुके छ क-

ल्याणक कथन किये हैं, और कुलमदसे ब्राह्मण कुलमें भगवान् आकर उत्पन्न हुए, उसको सूत्रकारने आश्चर्य कहा है, फिर उसी आश्चर्यको सब कोई आप लोग कल्याणक कहते हैं, तिस परभी आश्चर्य कहके कल्याणकत्व पने रहित ठहरानेके लिये प्रभुकी निंदा करना, यह कीतना अनुचित है, प्रभुका चरित्रही कल्याणरुपहै, उसमें अकल्याण ठयरानेका उद्यम करना प्रत्यक्ष मिथ्याहै, और इसी कल्पसूत्रमें पार्श्वनाथ चरित्रके अधिकारमें "तेणं कालेणं, तेणं, समएणं, पासे अरहा पुरिसादाणीए, पंच विसाहे, हुत्था" इस पाठके अर्थमें पार्श्वनाथ स्वामीके पांच कल्याणक विशाखा नक्षत्रमें हुए, ऐसा कहते हो, तो, फिर वीरप्रभुके चरित्रमें "तेणं, कालेणं, तेणं, समएणं, समणे भगव महावीरे, पंच हत्थुत्तरे, हुत्था" इस पाठके अर्थमे, श्रीमहावीर स्वामीके पांच कल्याणक हत्थुत्तरा (हस्तोत्तरा) नक्षत्रमें हुए, सो न कहना, यह तो प्रत्यक्षही सूत्रार्थ छुपानेसे विपरीत प्ररूपणाका दोषके भागी होते हो, प्रसग वश इतना लिखाहै मगर विशेष रूपसे पचाशक, जंबूद्वीपपन्नति, और आश्चर्य, वस्तु, स्थान वगैरह सब शङ्काओंका निवारण पूर्वक "बृहत् पर्युषणा निर्णय" नामा ग्रंथमें लिखनेमें आया है और संक्षेपमें थोडासा फिर अवसर पर लिखनेमें आवेगा,

हर समय ऐसी वातोंका विवाद चलाना बहुत बुराहै, कुसंप बढाने वालाहै, और अपने दृष्टिरागियोंके सामने व्याख्यानमें ऐसी चर्चा करना यह कमजोरी और झूठा आग्रहकी निशानीहै, यदि सत्य हो तो शास्त्रोंके पाठ खुलासा प्रगट करो, या-प्रीति भावसे शांतता पूर्वक ४।५ मध्यस्थोंके समक्ष न्यायके अनुसार सभामें धर्म वादसे सुबोधिकाकी वातोंका निर्णय करनेको तेयार हो। समाधान होजाना बहुत अच्छाहै, सत्य सबको ग्राह्यहै, विशेष क्या लिखुं

वीर निर्वाण २४४३, विक्रम संवत् १९७४,

श्रावण शुदी १३ बुधवार

हस्ताक्षर परमपूज्य उपाध्यायजी १००८ श्रीमत् सुमतिसागरजी महाराजका लघुशिष्य—मुनि—मणीसागर, लालबाग—मुंबई.

श्रीमान् वल्लभविजयजीसे विशेष विनती.



श्रीमान् वल्लभविजयजी महाराजसे विशेष सूचना करनेमें आती है आपको इतने वडे सुप्रसिद्ध विद्वान् मानता हूं, जिसपरभी आपने गच्छपरंपराके आग्रहसे सुबोधिकामें जो अनुचित शब्द और शास्त्रविरुद्ध बातें थी उसको सुधारे विनाही "मक्षिका स्थाने मक्षिका पातः" जैसाका तैसा ही छपवाकर प्रगट करवाया यह सर्वथा अनुचित है एकने भूल किया तो दूसरे विद्वान्को उसे सुधारना चाहिये मगर वैसीकी वैसी परंपरा रूढी चलाना उचित नहीं और अपने अपने गच्छकी समाचारीकी आड लेना भी अनुचित है यह आपकी समाचारी जैनागम विरुद्ध है और ऐसा कहनेसे विधर्मियोंकों और जैनशासनके शत्रुओंकों आप कैसे परास्तकर सकोगे "पक्षपातो न मे वीरे न द्वेष कपिलादिषु युक्ति मद्वचनं यस्य तस्य कार्य परिग्रहः ॥ १ ॥" ऐसा विचारके गच्छ आग्रह छोडकर शास्त्रप्रमाण मान्य करो और सुबोधिकाकी भूलोको सुधारो या धर्मवादसे सभामें सत्य करके बतलाओ. अपनी भूल आप सुधारो, हमारी हमको बतलाओ और भिन्नताको मिटाओ आप तो यह बात करो सबसे क्या प्रयोजन है इन बातोंका समाधान आपस्में हो जावे तो बृहत् "पर्युषणानिर्णय" के प्रगट होनेका समय भी न आवे। संवत् १९६६ में भी आगष्ट महिनेकी ८ वीं तारीख गुजराती प्रथम श्रावण वदी ७ रविवारके जैनपत्रमें इस विषयका आपने उल्लेख करवाया था और खास आपने भी अकटोंबर महिनेका ३१ वी तारीख सन १९०९ आसोज वदी १३ वीरनिर्वाण २४३५ के जैनपत्रमें किया था उसमें आपने सत्य ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा करी थी उसको याद करो और इस वर्ष भी आपने उल्लेख

---

१. आपकी प्रतिज्ञाका जवाब आपकेही पूज्य न्यायांभोनिधिजी श्रीमद्आत्मारामजी महाराजकृत 'सम्यक्त्व शल्योद्धार' चौथी आवृत्तिके पृष्ठ १५८ वें के लेखसेही मिल जाता है सो नीचे मुजब है,—

करवाया है, सुबोधिकाभी आपने प्रगट करवाई है और भी कीतनेही कारणोंसे मेरेको बृहत् "पर्युषणा निर्णय." नामा ग्रंथ ६०० पृष्टका बनाना पडा है वो छपनेपर आया है, आपका मुंबई नगरीमें पधारना, और हमाराभी मुंबईमें चौमासा होना, दो भाद्रपदकीभी प्राप्ति होना, मुंबई नगरी जैसा जैनसमाज और बडे बडे विद्वान् मध्यस्थ विद्वानोंका यहां पर होना, आपके बडे प्रवर्तकजी श्रीमान्‌कांति विजयजी महाराजभी यहां पर और हमारे गुरुमहाराज उपाध्यायजी श्रीसुमतिसागरजी महाराज तथा श्रीमान् मोहनलालजी महाराजके पट्टधर श्रीमान् यश सूरिजीम-

---

ढुढियोंका प्रश्न–'पचमी छोड के चौथको सवत्सरी करते हो' उत्तर–हम जो चौथकी संवत्सरी करते हैं सो पूर्वाचार्योंकी तथा युगप्रधानकी परपरासे करते हैं श्रीनिशीथ-चूर्णिमें चौथकी संवत्सरी करनी कही है। और पंचमीकी सवत्सरी करनेका कथन सूत्रमें किसी जगहभी नहीं है, सूत्रमें तो आषाढ चौमासेके आरभसे एक महीना और वीस दिन सवत्सरी करनी, और एकमहिना वीस दिनके अदर सवत्सरी पडिक-मनी, कल्पती है परन्तु उपरात नहीं कल्पती है अदर पडिकमने वाले तो आरा धक हैं उपरात पडिक्कमनेवाले विराधक हैं ऐसे कहा है तो विचार करो कि जैन पंचांग व्यवच्छेद हुए हैं जिससे पचमीके सायकालको सवत्सरी प्रतिक्रमण करने समय पचमी है कि छठ होगई है जिसकी यथास्थिती खबर नहीं पडती है और जो छठमें प्रतिक्रमण करीये तो पूर्वोक्त जिनाज्ञाका लोप होता है इसवास्ते उस कार्यमें बाधकका समय है। परतु चौथकी सायको प्रतिक्रमणके समय पचमी हो जावे तो किसी प्रकारकाभी बाधक नहीं है। इसवास्ते पूर्वाचार्योंने पूर्वोक्त चौथकी सवत्सरी करनेकी शुद्ध रीति प्रवर्त्तन करी है सो सत्य ही है। परन्तु ढुढिये जो चौथके दिन सन्ध्याको पचमी लगती होवे तो उसी दिन अर्थात् चौथको संवत्सरी करते हैं न तो किसी सूत्रके पाठसे करते हैं और न युगप्रधानकी आज्ञासे करते हैं किंतु केवल स्वमनिकल्पनासे करते हैं॥

ढुढियों सबधी आपके पूर्वजके उपरके लेखको सरल भावसे न्यायपूर्वक समझकर १ महिना और २० दिन, ५० वे दिन पहिले भाद्रपदमें वार्षिक पर्व करना मान्य करो, व्यर्थ शुष्क वाद छोडो। दूसरे महाव्रतको विचारो।

हाराजके शिष्य पंन्यासजी श्रीऋद्धिमुनिजीकाभी यहांपर योग और अंचलगच्छके मुनि श्रीदानसागरजी, श्रीरविचंद्रजीकाभी योग ऐसे सब योग मुंबई नगरीमें पहिले भी नहीं मिले होगे इसलिये न्यायालय और धर्मशास्त्रके नियम मुजब आपस्में प्रीतिभावसे शांततापूर्वक धर्मवाद करके अच्छे अच्छे सुयोग्य मध्यस्थ विद्वानोंके और २०।२५ आगेवान श्रावकोंके समक्ष समाधान हो जाना अतीव श्रेष्ठ है, हमारे पासके शास्त्रप्रमाण हम बतलावे और आपके पासके शास्त्रप्रमाण आप बतलावें और अपना २ कथन भी सुनावें, वाद मंडल जो न्याय करे सो दोनोंकों मान्य करना चाहिये, उससे हर वर्षका बखेडा तथा वारंवार काले कागज करना, कुसपकी वृद्धि होना और लोगोंका शंसयरूप मिथ्यात्वमें गिरना वगैरह बहुत नुकशान हो रहे हैं उसका निर्मूलन होनेसे प्रीतिभावमें शासनकी उन्नति थोडे समयमें होजावेगी अपने अपने गच्छकी परंपराका हठवाद पकड़ बैठना विवेकीयोंकों उचित नहींहै, सत्य अंगीकार करनाही श्रेय है विशेष क्या अर्ज करूं, आप स्वयं विचारवान् हैं इसलिये लोग दिखाउ कल्पित बहाने छोडकर इसका उत्तर दीजिये इसमें कोई भूल हो तो क्षमा करना, आप वडे हैं और मैं लघु हूं, हंसकी तरह सार देखके न्याय पक्षमें रहना.

वीर निर्वाण २४४३, विक्रम संवत् १९७४. भाद्रपद कृष्ण ३

हस्ताक्षर–मुनि–मणिसागर–लालबाग, मुंबई.

अर्हम्

श्रीयुगादीश्वराय नमः ॥

लघु पर्युषणा निर्णयस्य प्रथमाङ्कः ।

शास्त्रानुसार प्रथम भाद्रपदमें- पर्युषणापर्वका आराधन करो ?

जिनाज्ञाभिलाषी सर्व जैन समुदायसे निवेदन किया जाताहै, अपने पर्युषणापर्व सब पर्वोंसे श्रेष्ठ मानतेहैं, इसका आराधन करनेमें जैनीमात्र अपना कल्याण समझतेहैं, और जैनशास्त्रोंमें जगह जगह पर खुलासा लिखाहै, कि जिनाज्ञामुजब थोडासा धर्मकार्य किया जावे तोभी जन्म, जरा, रोग, शोक, मरण, नरकादि भव भ्रमणसे दूर करनेवाला होताहै, और आज्ञा विरुद्ध तप जपादि बहुत करें तोभी संसारमें भटकानेका कारण होताहै, इसलिये दृष्टिराग लोगोंकी प्रवर्ति मानबडाई और अपनी अपनी परपराका हठवाद छोड़कर शास्त्रप्रमाणमुजब धर्मकार्य करना चाहिये ॥

इस वर्ष लौकिक टिप्पणोंमें दो भाद्रपद मास हुएहैं, और जैन समाज उनटिप्पणोंके आधारसे मास, पक्ष, दिवस, तिथि, वार, नक्षत्र, मुहूर्त्त, लग्न और संवत्सर वगैरह मानतीहै, उससे दो भाद्रपदभी मानेगी, और ससारिक व धार्मिक कार्यभी करेगी और दो भाद्रपद माननेसे कीतनेही जैनी पहिले भाद्रवमें पर्युषणा पर्वका आराधन करेंगे, और कितनेही दूसरेमें । मगर जिनेश्वरभगवान्‌की वाणी अविसंवादी पूर्वापर विरोध रहित होनेसे, पर्युषणा आराधनमें एकही आज्ञाहै, भिन्नभिन्न नहीं, यद्यपि काल दोष और अल्पज्ञता वगैरह कारणोंसे शास्त्रकारोंके अभिप्राय.को समझे विना इस बातमेंभी भिन्नता पड़ गई है, कितनीही बातें जैनसमाजमें अंध श्रद्धा और रूढी परंपरागतसेभी दाखल होगई हैं, इ-

सकालमें अतिशय ज्ञानीके वियोगमें केवल जैनागमका बड़ाभारी आधारहै, इसलिये अपने गच्छकी रूढी परंपरा और दृष्टिराग का पक्षपातको छोड़कर आत्मार्थी भव्य जीवोंको आगमोक्त बात प्रमाण करना उचितहै,

और पर्युषणा करने संबंधी यद्यपि निशीथ भाष्य, चूर्णि, बृहत्कल्पभाष्य, चूर्णि, वृत्ति, कल्पसूत्रकी निर्युक्ति, वृत्ति और पर्युषणाकल्पचूर्णि वगैरह प्राचीन शास्त्रोंमें बहुत विस्तारसे कथन कियाहै, मगर आज कल वर्तमानिक समयमें गांव, गांव, नगर, नगरमें हरवर्षे हजारों जगहों पर वंचाता हुआ श्रीकल्पसूत्रमें वर्षाऋतु आनेपर आषाढ चौमासीसे कीतने दिन जानेपर पर्युषणा करना उसमे किस प्रकारके कर्तव्यकरने वगैरह सब अधिकार उस सूत्र परहीहै उसका पाठ देखोः—

जहा णं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ। तहा णं गणहरा वि वासाणं सवीसइराए मासे वइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति ॥ जहा णं गणहरा वि वासाणं सवीसइ जाव–पज्जोसविंति। तहा णं गणहर सीसा वि वासाणं जाव–पज्जोसविंति ॥ जहा णं गणहरसीसा वासाणं जाव० पज्जोसविंति। तहा णं थेरावि वासावासं जाव० पज्जोसविंति ॥ जहा णं थेरा वासाणं जाव पज्जोसविंति ॥ तहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति एए वि अ णं वासाणं जाव० पज्जोसविंति ॥ जहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा वि वासाणं सवीसइराए मासे वइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति। तहा णं अम्हंपि आयरिया उवज्झाया वासाणं जाव० पज्जोसविंति ॥ जहा णं अम्हं पि आयरिया उवज्झाया वासाणं जाव० पज्जोसविंति। तहा णं अम्हे वि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जो-

सवेमो । अंतरा वि य से कप्पइ नों से कप्पइ तं रयणिं उवायणावित्तए ॥ इत्यादि ॥

देखो-इसपाठमें एक महिना उपर वीस दिन, याने ५० दिन जाने पर श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी वर्षाकालमें पर्युषणा करतेथे उसी मुजब-गणधर, गणधर शिष्यादि, स्थविर, और वर्तमानिक विचरने वाले श्रमण निग्रंथ भी पर्युषणा करें तैसेही आचार्य उपाध्याय करें उसी मुजब अवभी मुनि गण करे, ५० वें दिनके भीतर ४६ वेदिन पर्युषणा करना कल्पे मगर ५० वें दिनकी रात्रिकोभी उल्लंघन करना नहीं कल्पे ॥ उपरका पाठ कल्पसूत्रकी साधु समाचारीका है।

अब जो वीरप्रभुकी आज्ञाके आराधन करने वाले तीर्थंकर-गणधर-पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंकी परंपराको मानने वाले होंगे सो आषाढ चौमासीसे तिथि, वार, सूर्यके उदय-अस्तके परिवर्तनसे, तारीख मुजब सरललासे दिनोंकी गिनती करके ५० वें अथवा ४६ वेदिन अवश्यही पर्युषणा पर्वका आराधन करेंगे, जितने रात्रिदिन व्यतीत होंवे उसकी गिनतीमें एक दिनभी कमती नहीं होसकता ॥

उपरके पाठमें भाद्रव मासका नाम मात्रही नहींहै, या दो भाद्र होनेपर पहिला भाद्रव अथवा दूसरा भाद्रपदकाभी नाम नहींहै, किंतु दिनोंकी गिनती बतलायाहै सो व्यवहारसे जहां ५० दिन पूरे होवे उसदिन पर्युषणा करना चाहिये ॥

और जैन टिप्पणाके अभावसे लौकिक टिप्पणामें श्रावण भाद्र आदि मासोंकी वृद्धि होनेपरभी दिनोंकी गिनतीसे ५० वे दिन पर्युषणा करना श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्योंनेभी कहाहै, श्रीविनय विजयजी उपाध्यायकृत कल्पसूत्रकी सुबोधिका वृत्ति श्रीमान्-वल्लभ विजयजीने शुद्ध करके छपवायाहै, उसके पृष्ठ २७० पहिली पुठीकी पंक्ति ८।६ का पाठ देखो.-

"जैनटिप्पनकानुसारेण यतस्तत्र युगमध्ये पौषो युगांते चाऽऽषाढो वर्धते, नान्ये मासास्तट्टिप्पनकं तु अधुना सम्यग् न ज्ञायते, ततः पंचाशतैव दिनैः पर्युषणा युक्तेति वृद्धाः ॥"

देखिये उपरके पाठमें खास विनयविजयजी जैन टिप्पणाके अभावसे लौकिक टिप्पणामें अधिकमास होवे तोभी दिनोंकी गिनतीसे ५० वें दिन पर्युषणा करनेकी वृद्ध–पूर्वाचार्योंकी आज्ञा ठहरातेहै, इससे अधिकमास आनेपरभी भाद्रमेंही पर्युषणा करनेका कोई नियम न रहा, किंतु दो श्रावण होवे तब दूसरे श्रावणमें और दो भाद्र होवे तब पहिले भाद्रमें ५० वें दिन पर्युषणा पर्वका आराधन करना विनयविजयजीके लेखसे श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्योंकी आज्ञासे सिद्ध होता है इसलिये दूसरे भाद्रपदमें पर्युषणा करनेका आग्रह करना शास्त्रप्रमाण विरुद्ध ठहरताहै, बस ! पक्षपात छोड़कर जहां ५० दिन पूरे होवे वहां पर्युषणा कर लेना जिनाज्ञा आराधक भव्यजीवोंको उचित है।

५० वें दिन पर्युषणा करना कल्पे, उसमेंभी कारण वश भीतर ४९ वें दिन कल्पे, मगर उसरात्रिको उल्लंघन करके ५१ वें दिनभी करना न कल्पे, ऐसा सब कोई कहतेहैं, मानतेहैं, तो फिर दो भाद्रव होने पर दूसरे भाद्रवमें ८० वें दिन पर्युषणा करनेका आग्रह करना जिनाज्ञामें कैसे होसकताहै ॥

और जैन टिप्पणाके अभावसे लौकिक टिप्पणामें अधिकमास होने परभी ५० वें दिनही पर्युषणा करनेकी पूर्वाचार्योंकी आज्ञाहुई, इससे जैसे भाद्रपदमेंही पर्युषणा करनेका नियम न रहा, तैसेही पर्युषणा पर्वके पिछाडी ७० दिनही अवश्य रखना यहभी नियम न रहा, क्योंकि ५० वें दिन प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा करनेसे पर्वके पिछाडी १०० दिन कार्तिक तक प्रत्यक्षपने रहतेहैं तोभी कोई दोष नहीं है। और पर्युषणाके पिछाडी ७० दिन ठहरनेका समवायांगजीसूत्रमें कहा सो यह तो जब अधिकमास न होवे तब चंद्रसंवत्सरके १२ मास. २४ पक्षोंकी अपेक्षासे, ४ महिनोंके वर्षाकालमें ५० वें दिन पर्युषणा करे तब स्वभाविकता से शेष ७० दिन रहते हैं, उससे ७० दिन रहनेका कहा है, मगर वर्तमानिक समयमें जब अधिकमास आवे तब १३ मास, २६ पक्षोंकी अपेक्षा पांचमहिनोंके वर्षाकालमेंभी पर्युषणाके बाद ७० दिन अवश्य रखना ऐसा किसी भी शास्त्रमें लिखा नहींहै, चंद्रवर्षके पाठको

अभिवर्द्धित वर्षमें आगे लाना और अधिकमास होने परभी भद्र जीवोंकों ७० दिन ठहरनेका कहना न्याय विरुद्धहै, और पर्युषणाके बाद ७० दिन ठहरनेका बतला कर दूसरे भाद्रपदमें ८० वें दिन पर्युषणा करनेका आग्रह करनेसे, प्रथम ५० दिनकी शास्त्रआज्ञा उल्लंघन होतीहै, और दूसरी तरफ कभी दो आश्विन होवे तवभी कार्त्तिक-तक १०० दिन होजातेहैं, तव क्या १०० दिनके भयसे प्रथम आश्विनमें पर्युषणा किये जासके यह कभी नहीं होसकता, परन्तु भाद्रमें पर्युषणा करके ५० दिनकी आज्ञा पालन करना और बादमें १०० दिन रहना यह तो शास्त्र सम्मतहीहै इस बातको दीर्घदृष्टिसे विचारना चाहिये।

और जहां साधु चौमासा ठहरा होवे वहांपर स्वचक्र परचक्रका भय होवे, तथा रोग मारी वगैरह कारणोंसे कार्त्तिक चौमासी पहिलेभी वहांसे विहार कर देवे तो कोई दोष नहीं, अथवा कार्त्तिक चौमासी हुए बादभी वर्षाका जोर होवे रास्तामें कादा कीचड होवे जीवोंकी उत्पत्ति होवे, तो मार्गशीर्ष पूर्णिमा तक ठहर जावे तो भी कोई दोष नहीं है, उत्कृष्टतासे मार्गशीर्ष पूर्णिमा तक ठहरना निशीथ भाष्य, चूर्णि, बृहत्कल्प भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, स्थानांगसूत्रवृत्ति, पर्युषणा कल्प चूर्णि, वृत्ति, कल्पनिर्युक्ति, वृत्ति, वगैरह प्राचीन शास्त्रोंमें खुलासा लिखाहै तथा इनहीं प्राचीन शास्त्रोंमें पूर्वधरादि महाराजोंके समयमें जैन टिप्पणा मुजब अधिकमास जब होता था तबभी १३ महिनोंके अभिवर्द्धित संवत्सरमें आषाढ चौमासीसे २० वे दिन (श्रावणशुदी ५ को) पर्युषणा करतेथे तबभी पर्युषणाके पिछाडी कार्त्तिक तक १०० दिन ठहरतेथे यहभी खुलासा लिखाहै, देखो-बृहत्कल्प भाष्य, निशीथ भाष्य, और कल्पसूत्रकी निर्युक्तिके पाठ नीचे मुजबहैं यथा–

इत्थ य अणभिग्गहियं, वीसतिरायं (२०) सवीसइमासं। (५०) तेण परमभिग्गहियं, गिहिणायं कत्तिओ जाव ॥ १ ॥ असिवाइकारणेहिं, अहवा वासं ण सुट्ठु आरद्धं। अभिवड्ढियंमि वीसा (२०), इयरेसु सवीसइमासो (५०) ॥ २ ॥ इय सत्तरी

(७०) जहराणा, असीइ (८०) णउइ (९०) वीसुतरसयं (१२०) च । जइ वास मग्गसिरे (१५०), दसराया तिरिण उक्कोसा ॥ ३ ॥ काऊण मासकप्पं, तत्थेव ठियाए जइ वास । मग्गसिरे सालंवणाणं, छमासिओ जेट्ठोग्गहो होइ ॥ ४ ॥

औरभी निशीथचूर्णिके दशवें उद्देशके पाठको देखोः-

अभिवड्ढिय वरिसे वीसतिराते (२०) गते गिहिणा तं करेंति, तीसु (३) चंदवरिसे सवीसतिराते मासे (५०) गते गिहिणा तं करेंति । जत्थ अधिमासगो पडति वरिसे, तं अभिवड्ढिय वरिसं भएणाति । जत्थ ण पडति तं चंदवरिसं सो य अधिमासगो जुगस्स अंते मज्जे वा भवति । जइ अंते नियमा दो आसाढा भवंति । अह मज्जे दो पोसा ॥ सीसो पुच्छति कम्हा अभिवड्ढिय वरिसे वीसतिरातं चंदवरिसे सवीसतिमासो ? उच्यते—जम्हा अभिवड्ढियवरिसे गिम्हे चेव सो मासो अतिक्कंतो तम्हा वीसदिणा अणभिग्गहियं तं करेंति, इयरेसु तीसु चंद-वरिसे सवीसतिमासो—इत्यर्थः ॥

तथा—सवीसति रातमासो, तो परेण अतिक्कामेउ ण वट्टति सविसति रातेमासेगते पुण जइ वास खेत्तं ण लब्भति, तो रुक्खस्स हेट्ठेवि पज्जोसवेयव्वं ॥

तथा आसाढ चाउमासियातो सविसतिराते मासे गते पज्जो-सवेंति, तेसिं सत्तरीदिवसा जहरणो वासकालग्गहो भवति, कहं सत्तरी ? उच्यते—चउएहं मासाणं वीसुत्तरादिवससतं

भवंति, सवीसतिमासो पण्हासं दिवसा ते वीसुत्तर (५०) मज्जतो साधितो सेसा सत्तरी ॥ इत्यादि ॥

देखिये–उपरके प्राचीन शास्त्रपाठोंमें अधिकमास होवे तव अभिवर्द्धित संवत्सरमें २० वें दिन और अधिकमासके अभावसे चंद्र संवत्सरमें ५० वें दिन पर्युषणा करें, तव यावत् कार्त्तिक तक अभिवर्द्धित वर्षमें १०० दिन और चंद्रवर्षमें ७० दिन पर्युषणाके पिछाडी जघन्यतासे ठहरे, तथा कारण वश छ महिनोंतक ठहरनेका कहाहै। और २० वें दिन पर्युषणा करनेका जैन टिप्पणाके अभावसे वीर संवत् ९९३ वें में वंध हुआ उस दिनसे अधिकमास होवे तोभी ५० वें दिन पर्युषणा करनेका पूर्वाचार्योंने नियम रक्खाहै और ५० वें दिन तो गांव, उपाश्रय (वस्ति) न मिले, रोगादि होवे तो भी जंगलमे झाड (वृक्ष)के नीचेभी अवश्य पर्युषणा कर लेना साफ लिखाहै और ५० वें दिनकी रात्रिको उल्लंघन करने वालेको आज्ञाभंगका दोष लगे, इसलिये ५० वें दिनको छोडना और अधिकमास होने पर भी पिछाडी ७० दिन रहनेका आग्रह करना सर्वथा शास्त्रविरुद्धहै, वर्तमानमे अधिक मास होनेसे पांच महिनोंके दश पक्षोंके १५० दिन प्रत्यक्ष होवे उसमें ७० दिनकी और ५० दिनकी दोनों वातें रखनेका नहीं वन सकता, दोनों वातें रखनेका आग्रह करना सर्वथा असंभवितहै।

और चंद्र प्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, समवायांग, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, भगवती, अनुयोगद्वार, प्रवचनसारोद्धार, वगैरह सूत्रोंमें तथा इनही आगमोंकी टीकाओंमें और निशीथ भाष्य, चूर्णि, वृहत्कल्प भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, कल्पनिर्युक्ति, वृत्ति, आवश्यक निर्युक्ति, वृहत् और लघु वृत्ति, पर्युषणा कल्प चूर्णि, स्थानांगसूत्रवृत्ति, दशवैकालिक निर्युक्ति, वृहद्वृत्ति, ज्योतिष्करंड पयन्न, वृत्ति, वगैरह प्राचीन सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंमें अधिक मासको गिनतीमें लियाहै।

तथा–"समयावली मुहुत्ता, दीहा पक्खाय मास वरिसाय ॥ भणिओ पलिआ सागर, उस्सप्पिणी सप्पिणीकालो ॥ १ ॥" इत्यादि नव तत्वप्रकरणकी गाथा मुजव–असंख्याते समय जानेसे १ आवलिका

होतीहै, १,६७,७७,२१६ आवलिका जानेसे दो घडी रूप १ मुहूर्त्त होताहै, ऐसे ३० मुहूर्त्त जानेसे अहोरात्रिरूप १ दिवस होताहै, ऐसे १५ दिवस जानेसे १ पक्ष होताहै, दो पक्ष जानेसे १ मास होताहै, १२ मासोंके जानेसे चंद्रसंवत्सर रूप १ वर्ष होताहै, (जब अधिकमास आवे तब १३ महिनोंका अभिवर्द्धितरूप १ वर्ष होताहै) सो तीन चंद्र और दो अभिवर्द्धित ऐसे पांच वर्ष जानेसे १ युग होताहै, यावत् इसी प्रकार पूर्व, पूर्वांग, पल्योपम, सागर, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, कालका प्रमाण केवली भगवान्ने कहाहै ॥

और भी चंद्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र वृत्तिका पाठ देखो—

यस्मिन् संवत्सरे अधिकमाससंभवेन त्रयोदशचंद्रस्य मासा भवंति, सोऽभिवर्द्धितसंवत्सरः॥ उक्तंच—"तेरस्स चंदमासा वासो अभिवड्ढिओ य नायव्वो" । एकस्मिन् चंद्रमासे अहोरात्रा एकोनत्रिंशत् भवंति द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागस्य अहोरात्रस्य २९-६२।३२। एतच्चानंतरं चोक्तं, तत एष राशिस्त्रयोदशभिर्गुणितो जातानि त्रीणि अहोरात्रशतानि त्र्यशीत्यधिकानि चतुश्चत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य ३८३।६२।४४। एतावदहोरात्रस्य प्रमाणोऽभिवर्द्धितसंवत्सर उपजायते ॥

तथा—प्रथमचंद्रस्य संवत्सरस्य चतुर्विंशतिपर्वाणि प्रज्ञप्तानि, द्वादशमासात्मको हि चांद्रः संवत्सरः, ऐकैकस्मिंश्च मासे द्वे द्वे पर्वणी, ततः सर्वसंख्यया चंद्रसंवत्सरे चतुर्विंशतिः (२४) पर्वाणि भवंति ॥ द्वितीयस्याऽपि चंद्रसंवत्सरस्य चतुर्विंशतिः (२४) पर्वाणि भवंति ॥ तृतीयाभिवर्द्धितसंवत्सरस्य षड्विंशतिः (२६) पर्वाणि, तस्य त्रयोदशमासात्मकत्वात् ॥ चतुर्थस्य

चांद्रसंवत्सरस्य चतुर्विंशतिः (२४) पर्वाणि ॥ पंचमस्य अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य षड्विंशतिः (२६) पर्वाणि कारणमनन्तरमेवोक्तं । तत एवमेवोक्तेनैव प्रकारेण 'सपुव्वावरेणंति' पूर्वापरगणितमिलनेन पंचसांवत्सरिके युगे चतुर्विंशत्यधिकं पर्वशतं (१२४) भवतीत्याख्यातं सर्वैरपि तीर्थकृद्भिर्मया चेति ॥

देखिये उपरके पाठमें २९ दिन, उपर १ दिनका ६२ भाग करके ३२ भाग ग्रहणकरें उतने प्रमाणका (२९।६२।३२) १ चंद्रमास होता है, उसको बारह गुणा करनेसे ३५४ दिन, उपर १ दिनका ६२ भाग करके १२ भाग ग्रहणकरे उतने प्रमाणका (३५४।६२।१२) १ चंद्रसंवत्सर होता है, और अधिकमास होवे तब १३ चद्रमासोंका अभिवर्द्धित संवत्सर, ३८३ दिन, उपर १ दिनके ६२ भाग करके ४४ भाग ग्रहण करे (३८३।६२।४४) इतने काल प्रमाण कहाहै,

और पांचवर्षोंके १ युगमें, ३१ मासकी दो दो पाक्षिक गिननेसे पहिले चद्रवर्षकी २४ पाक्षिक, तथा दूसरे चद्रवर्षकी भी २४ पाक्षिक, और तीसरा अभिवर्द्धित वर्ष १३ महिनोंका होनेसे २६ पाक्षिक, चौथे चंद्र वर्षकी २४ पाक्षिक, और पाचवें अभिवर्द्धितकी फिर २६ पाक्षिक, एवं पाच वर्षोंके दो अधिकमासोंकी ४ पाक्षिक, गिनकर १ युगके, ६२ महिनोंकी, ६२ अमावस्या और ६२ पूर्णिमाकी १२४ पाक्षिक, याने पर्वणी अनादि कालसे अनंत तीर्थंकर महाराजोंने कहीहै, वैसेही शासननायक श्रीवीरप्रभुनेभी कहीहै ॥ इसलिये अनत तीर्थंकर महाराज केवली भगवान्का कहा हुआ काल प्रमाणमेंसे जितना काल व्यतीत होवे, चला जावे, उसमेंसे १ महिनाके दो पक्षोंके ३० दिन तो क्या १ समय मात्रभी गिनतीमें लेना निषेध करनेसे अनंत तीर्थंकर महाराजोंका वचन उत्थापनका दोष लगे, इसलिये १०० दिन होने परभी ७० दिन कहना, और ८० दिन होने परभी ५० दिन कहना और ३०।३० दिनोंको गिनतीमें छोड़ देना यह सर्वथा जैनागम विरुद्धहै। ऐसा कोई भी जैन आगम न होगा जिसमें अधिकमासके ३० दिन व्यतीत होने

परभी गिनतीमें नहीं लेना कहा हो। यह बात केवल अंध श्रद्धा, और रूढी परंपराकी होनेसे आत्मार्थियोंको पकड़ बैठना और हठवाद करना उचित नहीं हैं॥

और निशीथ चूर्णिमें तथा दशवैकालिक वृहद्वृत्तिमें, अधिकमासको (वर्षके शिखर रूप विशेष शोभा रूप) कालचूला कहाहै, मगर उसके दिनोंको गिनतीमें प्रमाण मानेहैं, इसलिये कालचूलाके नामसे दिनोंकी गिनती निषेध करना सो जैनागम विरुद्धहै, देखो निशीथ चूर्णिके पृष्ठ २१ वें का पाठ नीचे मुजबहै यथा—

इदाणीं खेत्तचूला, सा तिविहा अह—तिरिय—उड्ढ गाहा। अह—इति, अधो लोकः, तिरिय—इति, तिर्यक् लोकः, उड्ढ—इति, उर्ध्वलोकः। लोगस्स सद्दो पत्तेगं। चूला इति, सिहा होंति। भवति। इमा इति प्रत्यक्षे तुः शब्दो क्षेत्राऽवधारणे। अहोलोगादीणि पच्छद्धेणं जहासंखं उदाहरणा। सीमंतग इति, सीमंतगो नाम णरगो रयणप्पभाए पुढवीइ पढमो सो अहलोगस्स चूला। मंदरो—मेरु सो तिरियलोगस्स चूला, अतिक्रान्तत्वात्। अहवा तिरियलोगपतिठियस्स मेरोवरि चतालीसं जोयणा चूला सो तिरियलोग चूला, व सद्दो समुच्चये पायपूरणे वा, इसित्ति, अप्पभावे, पइति, प्रायो-वृत्त्या, भार इति, भारकंतस्स पुरिसस्स गायं पायसो इसि-णयं भवति, जाव एवं ठिता सा पुढवी इसिप्पभारा णाम इति, एतमभिहाणं तस्स सा य सव्वठसिद्धिविमाणाउ उवरिं वारसेहिं जोयणेहिं भवति, तेण सा उड्ढलोअस्स चूला भव-ति॥ इयाणिं काल—भाव चूलाउ दोवि एगगाहाए भणंति।

अहिमास उउकाले, इत्यादि गाहा । वारसमास वरिसाउ अहिउ मासो, अहिमासउ—अभिवड्ढिय वरिसे भवति, सो य अधिकत्वात् कालचूला भवति, तु सद्दोप्पदरिसणेण, केवलं अधिको कालाः कालचूला भवति । अंतो विवड्ढमाणो कालो कालचूलाए भवति, एवं जहा अवसप्पिणीए अंते अतिदुसम-दुसमाए सो अवसप्पिणीए अंते कालचूला भवति ॥ इत्यादि ॥

देखिये-उपरके पाठमे सर्वार्थसिद्धि विमानके उपर बारह योजन पर इषत्प्राग्भारा नामा जो पृथ्वीहै, जिसको सिद्ध शिला कहतेहैं, उसको उर्द्ध (उचे) लोककी चूला कहाहै, तथा लाख योजनके मेरु पर्वतको और उस परके ४० योजनके शिखरको तिर्यग् (तिरछे) लोककी चूला कहा, तैसेही अभिवर्द्धित वर्षमें १२ महिनोंके उपर तेरहवा अधिक मासको वर्षकी चूला कहा और अवसर्पिणीके अंतमें २१००० हजार वर्षके छट्ठे आरेको अवसर्पिणीकी कालचूला कही, सो चूलाकहो, शिखर कहो, विभूषा विशेष शोभा कहो, सबका तात्पर्य एकहीहै, जैसे मुनिको आचार्य, उपाध्याय, पद विशेष शोभा रुप होतेहैं तैसेही चूला कहनेसे विशेष शोभा रुपहै, इसलिये चूला कहने परभी गिनती रहित नहीं होसकता, जिसपरभी चूला कहके अधिकमासके दिनोंको गिनतीमें लेना निषेध करतेहैं सो शास्त्रविरुद्धहै।

और जब दो आषाढ होवे तब दूसरे आषाढमे चौमासी प्रतिक्रमण करनेमें आताहै, तैसेही दो भाद्रपद होवे तब दूसरे भाद्रमें पर्युषणा नहीं हो सकते, क्योंकि—उष्णकालमें ज्येष्ट आषाढ ग्रीष्मऋतु कहीजातीहै, और चोमासी प्रतिक्रमण ग्रीष्मऋतु पूरी होने पर, तथा वर्षा ऋतु शुरुहोनेकी आदिमें किया जाताहै, तथा जैन शास्त्रोंमें जब दो आषाढ होवे तब दूसरे आषाढ शुदीके अंतमें पांचवा अभिवर्द्धित वर्ष पूरा होताहै तथा उसी दिन युगभी पूरा होताहै इसलिये चौमासी प्रतिक्रमण दूसरे आषाढ शुदीमें करनेमें आताथा, दूसरे आषाढमें

चौमासी प्रतिक्रमण करनेसे अधिकमास गिनतीमें निषेध नहीं होसकता, क्योंकि दो आषाढ होनेसे १३ महिनोंके २६ पक्षोंका अभिवर्द्धित संवत्सर शास्त्रकारोंने कहाहै, उसकी अपेक्षा पांच महिनोंके दशपाक्षिक धूप कालमें प्रत्यक्ष होतेंहैं, सो प्रमाण गिनतेहैं इसलिये दूसरे आषाढमें चौमासी करने परभी पहिला आषाढ अप्रमाण नहीं होसकता, और पहिले आषाढमें ग्रीष्मऋतु तथा वर्ष पूरा नहीं होता, तथा वर्षा ऋतुकी शुरूयातभी नहीं होती इसलिये पहिले आषाढमें चौमासी प्रतिक्रमण नहीं होसकता। और शास्त्रोंके हिसावसे (मारवाडी) श्रावण वदी १, गुजराती आषाढ वदी १ को वर्षा ऋतु शुरू होतीहै, नवीन वर्षभी शुरू होताहै, इसलिये उसकी आदिमें और ग्रीष्मऋतुकी तथा वर्षकी पूर्त्तिमें दूसरे आषाढके अंतमें चौमासी प्रतिक्रमण करनेमें आताहै। निशीथ चूर्णि, ज्योतिष्करंड पयन्न वृत्ति, वगैरह शास्त्रोंमें आषाढकी वृद्धि ग्रीष्मऋतुमें गिनीहै "अभिवड्ढिय वरिसे गिम्हे चेव सो मासो अतिक्कंतो" इति वचनात्। और प्रत्यक्षमेंभी यही वात देखनेमें आतीहै, इसलिये दूसरे आषाढमें चौमासी कृत्य करना शास्त्र प्रमाणसे सिद्धहै, मगर उसीतरह वर्तमानिक दो भाद्रहोनेंसे, दूसरे भाद्रमें पर्युषणा पर्वका आराधन करना शास्त्र प्रमाण विरुद्ध ठहरताहै, इसलिये प्रथम भाद्रमें पर्युषणा करना चाहिये, क्योंकि मास प्रति वद्ध आषाढ कार्त्तिक चौमासी कृत्योंकी तरह मासवृद्धि होनेपरभी पर्युषणा पर्वका आराधन करना भाद्रमास प्रतिवद्ध नहींहैं, क्योंकि "अभिवड्ढियंमि वीसा (२०) इयरेसु सवीसइ मासो (५०)" इत्यादि। निशीथ भाष्य और चूर्णिके पाठ उपरमेंही दिखलायेंहैं, उससे प्राचीनकालमें वर्षाऋतुमें मासवृद्धि नहीं होतीथी, मगर ग्रीष्मरुतुमें आषाढकी वृद्धि होने परभी दूसरे आषाढमें चौमासी कृत्य किये वाद वीस (२०) वें दिन श्रावणशुदीमें पर्युषणा पर्वका आराधन करतेथे, मगर जैन टिप्पणाके अभावसे २० दिनका कल्प विच्छेद हुआ, और लौकिक टिप्पणोंमें वर्षाऋतुमें भी मास वढने लगे उसी समयसे मासवृद्धि होनेपरभी ५० वें दिन पर्युषणा करनेकी मर्यादा पूर्वाचार्योंने रक्खीहै, और मासवृद्धिके अभा-

वमेंभी ५० वें दिन पर्युषणा करनेकी अनादि कालसे अनंत तीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि महाराजोंकी मर्यादाहै, और वर्तमानिक भाद्रवृद्धिसे दूसरे भाद्रमें पर्युषणा करनेसे ८० दिन होतेहैं, ८० वें दिन पर्युषणा करनेसे अनंत चौवीसीयोंकी अपेक्षा अनंत तीर्थंकर महाराजोंकी मर्यादा उल्लंघनका दोष आताहै, पर्युषणा महिनोंके हिसावसे नहींहै, किंतु वर्षाऋतुकी शुरुयातसे दिनोंकी गिनतीके हिसावसेहै । निशीथ-चूर्णि, कल्पसूत्र और कल्पसूत्रकी टीकाओंमें साफ खुलासा लिखाहै, इसलिये अनत तीर्थंकर महाराजोंकी मर्यादा विरुद्ध होकर दूसरे आषाढके वहाने दूसरे भाद्रमें ८० वें दिन पर्युषणा करनेका आग्रह करना अनुचितहै, वर्षाऋतुकी शुरुआत श्रावण वदी १ (गुजराती आषाढ वदी १) से ४९ वें दिन दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रमें पर्युषणा करना शास्त्रप्रमाणानुसार जिनाज्ञामें है, मगर दूसरे भाद्रमें ८० वें दिन जिनाज्ञा नहींहै,

और अधिकमासमें लोग शुभकार्य नहीं करते, तो पर्युषणा जैसा महान वड़ा शुभकार्य कैसे होसके? ऐसी शंका भी नहीं लाना चाहिये क्योंकि मुहूर्त्तमें करने योग्य ससारिक व दीक्षा प्रतिष्ठादि धार्मिक कार्य तो खास तिथि, वार, नक्षत्र, योग, वगैरह सब देखके करनेमें आतेहैं, उसमें पौष और चैत्र इनदोनों मलमासोंमें, अधिकमासमें, क्षयमासमें, क्षयतिथिमें, वृद्धितिथिमें, कृष्णपक्षकी १३।१४ और अमावस्या इन तीन क्षीण तिथियोंमें, ग्रहणके ३ दिन पहिलेमें और ३ दिन पीछेमें, गुरुके, और शुक्रके अस्तमें, हरिशयन याने-चौमासेमें, सिंहेगुरु याने-१३ महिनो तकके सिंहस्थमें, और भी कितनेही मास, तिथि, वार, नक्षत्र, राशि चंद्र, भद्रादियोग वगैरहोंमें मुहूर्त्तवाले शुभकार्य नहीं होसकते, मगर दान, शीयल, तप, देवपूजन गुरुवंदन, सामायिक, प्रतिक्रमण, पोषध, चौमासी और वार्षिक वगैरह धर्मकार्य तो विना मुहूर्त्तवाले होनेसे अधिकमासमें, क्षयमासमें, पौष-चैत्र मलमासमे और सिंहस्थ वगैरहमें भी करनेमें किसी तरह की वाधा नहीं है, इसलिये अधिकमासमें पर्युषणा वगैरह धर्मकार्य करनेमेंभी कोई प्रकारका दोष नहींहै । अधि-

कमासमें धर्मकार्यरूप शुभ काम नहीं करना ऐसा किसी भी जैनशास्त्रमें नहीं लिखा। देखो–सिंहस्थमें १३ महिनों तक मुहूर्त्तवाले शुभकार्य नहीं होवे, मगर पर्युषणा और चौमासी वगैरह धर्मकार्य तो १३ महिनोंका सिंहस्थमें भी जैनीमात्र सब कोई करतेहैं, सो प्रगट बात है, इसलिये बिना मुहूर्त्तका धर्मकार्य करनेका कीसी समय निषेध नहींहै, जिस परभी ज्योतिष् शास्त्रका नाम लेकरअधिक मासमें शुभकार्य नहीं होनेके बहाने पर्युषणा करनेकाभी निषेध करते है सो शास्त्र विरुद्धहै,

और जैसे जैनशास्त्रोंमें अधिकमासके दिनोंको गिनतीमें लिये हैं, तैसेही जैनेतर अन्यमतावलंबियोंसेंभी अधिकमासकेदिनोंको गिनतीमें लियेहैं, निर्णयसिंधु नामा लौकिक धर्मशास्त्रका पाठ देखोः—

तत्र संक्षेपतः कालः षोढा, अब्दो-यन-मृतु-मासः-पक्ष-दिवस इति, पुनस्तत्र वक्ष्यमाणैः श्रावणादिद्वादशमासैस्तदब्दं। मल-(अधिक) मासे तु सति षष्ठिदिनात्मकः एको मासो द्वादशमासत्वमविरुद्धमिति। तथा च व्यासः, षष्ट्या तु दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः—इति। अथ मलमास—क्षयमासनिर्णयः। अथ मलमासः तत्रैकमात्रसंक्रांतिरहितः सितादिश्चांद्रो मासो मलमासः एकमात्रसंक्रांतिराहित्यमसंक्रांतित्वेन, संक्रांतिद्वयत्वेन च भवति–इति। मलमासो द्वेधा, अधिकमासः—क्षयमासश्चेति। तदुक्तं काठकगृह्ये, यस्मिन् मासे न संक्रांतिः, संक्रांतिद्वयमेव वा। मलमासः स विज्ञेयो मासः स्यात् तु त्रयोदशः। तथा च उक्तं हेमाद्रिनागरखंडे—नभो वाथ नभस्यो वा मलमासो यदा भवेत्, सप्तमः पितृपक्षः स्यादन्यत्रैव तु पंचमः॥ इत्यादि॥

देखिये उपरके पाठमें अधिकमास होनेसे उसके ३० दिन गिन कर ६० दिनोंका १ महिना गिननेसे १२ महिनोंका वर्ष कहें, अथवा दोनों

महिने अलग अलग गिनकर १३ महिनोंका वर्ष कहें तो भी कोई विरोध नहींहै, और वर्षाऋतुमें अधिकमास न होवे तब (मारवाडी आसोजवदी का, गुजराती भाद्रवदीका) पाचवा पितृपक्ष याने श्राद्धपक्ष होताहै, मगर श्रावण या भाद्रपद अधिक होवे तब उसके ३० दिनोंके दो पक्ष गिननेसे सातवा श्राद्धपक्ष कहाहै। सिर्फ संक्रांतिरहितको मलमास याने-अधिकमास कहतेहैं। जैसे संक्रांतिरहित अधिकमासको मलमास कहा, तैसेही दो संक्रातिवाले क्षय मासकोभी मलमास कहतेहैं, मगर दिनोंकी गिनतीमें लेतेहैं। और अधिकमासमें विशेष दानपुण्य करनेके लिये 'पुरुषोत्तम अधिक मास' कहतेहैं, उसके ३० दिनोंमें रोजीना हमेशा कथा सुनतेहैं, विशेषरूपसे दान पुण्यादि कार्य करतेहैं, इसलिये अन्यमतमें लौकिक धर्मशास्त्रोंमें अधिकमासको नहीं गिना, ऐसा प्रत्यक्ष मिथ्या कहनाभी सर्वथा अनुचितहै, हां ! अधिकमास, क्षयमास, हरिसयन (चौमासा), गुरुशुक्रका अस्त और १३ महिनोंका सिंहस्थ वगैरहोंमें मुहूर्त्तवाले कार्य करना मना कियाहै, मगर उससे अधिकमासके ३० दिन गिनतीरहित कदापि नहीं होसकते।

और अधिकमासको नहीं माननेका हठ करनेवाले जब लौकिक टिप्पणामें कार्त्तिक महिनेका क्षय आवे तब श्रीवीरप्रभुका निर्वाण संबंधी दीपमालिकापर्व, गौतमस्वामीका केवलज्ञान उत्पत्तिका महोत्सव, नवीन वर्षकी शुरवात, ज्ञानपचमी तथा चोमासी प्रतिक्रमण और कार्त्तिकपूर्णिमा कैसे करते (मानते) होंगे, क्योंकि जैसे संक्रांतिरहितको अधिकमास कहते हैं, वैसेही दो संक्रातिवालेको क्षयमास कहतेहैं। चैत्रादि सात महिने लौकिक टिप्पणामें अधिक होतेहैं, तैसेही कार्त्तिकादि तीन ३ महिने क्षयभी होतेहैं, अधिकको नहीं माननेवालोंको क्षय मास भी नहीं मानना पडेगा तो क्या दीवाली, ज्ञान पचमी, वगैरह धार्मिक कार्य आश्विनमासमें करेंगे या मार्गशीर्षमें सो भी कभी नहीं होसकता, इसलिये हठवाद छोडकर धर्मकार्योंमें अधिकमासके दिनोंको गिनतीमें मानना शास्त्रप्रमाण और न्याय सपन्न होनेसे उचितहै,

जहा दिनोंकी गिनतीसे पर्युषणा करना श्रीकल्पसूत्रादि शास्त्रकारोंने

बतलाया वहांपर शास्त्रकारोंके विरुद्ध होकर अधिकमासको नहीं मानने का बखेडा करना सर्वथा अनुचितहै। कैसी अफसोसकी बातहैं अधिक-मासके ३० दिन नहीं गिनना, नहीं गिनना कहतेहैं, लोगोंको बतलाते-हैं, फिरभी आप अधिकमासके दो पक्षोंके ३० दिन गिनतीमें लेतेभीहैं, देखो—जब दो आषाढ आवे, तब जैन शास्त्रानुसार दूसरे आषाढको अधिक महिना कहतेहैं, उसी दूसरे आषाढमें चौमासी प्रतिक्रमण वगैरह सब कृत्य आपलोग करतेहैं, पहिला आषाढ तो स्वभाविक बारहवा महिनाहै, जब वृद्धि होवे, तब दूसरा आषाढ तेरहवा कहा जाताहै, इसलिये पहिलेको अधिक कहना शास्त्रविरुद्धहै, अधिकको नहीं मानते तो फिर दूसरेमें चौमासी कृत्य किस वास्ते करते हो? अधिकको नहीं मानना, फिर उसीमेंही पर्व करना, यह किस घरका न्यायहै । और अधिक मासके दिनोंको नहीं गिनते हो तो १५।१५ दिनोंके दो पाक्षिक अधिकमासमें किस लिये करते हो?

और जब लौकिक टिप्पणामें दो भाद्रपद होवे, तब आप लोग पहि-लेको अधिक ठहराते हो, और दूसरे भाद्रपदमें पर्युषणा करते हो, पहिले भाद्रको अधिक कह कर उसके ३० दिन गिनतीमें छोड देतेहो, तो, हम आप साहिबोंसे पूछतेहैं, कि—किसी साधु, साध्वी, या श्रावक, श्राविकाने, आषाढ चौमासीसे उपवास करना शुरू किया होवे, और दो भाद्र आवे, तब उनको ५० उपवास कब पूरे होवेंगे, और ८० उप-वास कब पूरे होवेंगे, तो, इसके उत्तरमें आप साहिब अपने मुख-सेही, ५० उपवास पहिले भाद्रमें, और ८० उपवास दूसरे भाद्रमें, पूरे होनेका कहतेहो, मानतेहो, लोगोंको ५०।८० उपवास पूरे होनेका, पहिला—दूसरा भाद्र दिखलातेहो, उसमें आप लोग पहिला भाद्रके ३० दिनोंको गिनतीमें लेतेहो, और ३० उपवासोंका लाभभी बत-लातेहो, फिर ३० दिन गिनतीमें नहीं, यह बाललीला कौन बुद्धिमान मान सकताहै,

और आप लोग १ महिनेके ३० उपवासोंमें, १॥ महिनाके (४५ दिनों-के) उपवासोंमें, १५।२०।२५ दिनोंके उपवासोंमें, अधिकमासके दिनों-

कों गिनतीमें लेतेहैं, १४।१५ दिनोंके दो पाक्षिक भी करतेहैं, और अधिकमासके ३० दिनोंमें समय-समय सब जीवोंके ७।८ कर्म बंधते हैं, उसके पुण्य-पापको आप लोग गिनतीमें लेतेहै, और जैसे सामायिक प्रतिक्रमणादि धर्मकार्य जितने दिन किये होवे उतने दिन गिनतीमें लेतेहै, तैसेही वर्षाऋतुमें जितने दिन जावे, उसको तारीखके हिसावसे उतने दिन आप लोग प्रत्यक्षमें गिनतेहैं, फिर नहीं गिनना कहतेहैं यह तो हठवादके सिवाय और क्या कहा जावे। अफसोस!!! आप लोग १ महिनाके ३० दिनोंमें साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाओंने, तप-संयमका आराधन किया होवे, उसको गिनतीमें लेतेहै, उतने दिनोंमें कर्मोंकी निर्जरा मानतेहैं, और पापी प्राणियोंने हिंसादि १७।१८ पापस्थानकोंका सेवन किया होवे, उतने दिनोंमें उसके कर्म बंधन मानतेहै, फिरभी ३० दिनोंको गिनतीमें उडाकर उतने दिनोंके तप-संयमको और पापसे कर्मबंधको उडाना चाहतेहो सो कभी हुआ नहीं, होगा नहीं, और होसकेगाभी नहीं, ऐसा आप लोगोंका अन्याय आपके दृष्टिरागी भोले भद्रजीवोंके सिवाय विवेकी आत्मार्थी जैनी कोईभी नहीं मान सकतेहैं।

और भी अधिकमासको गिनतीमें लेने संबधी शास्त्रोंके प्रमाण और युक्तिये बहुत हैं, मगर विस्तारके भयसे यहां पर नहीं लिखते, तथा अधिकमासको गिनतीमें निषेध करनेके लिये, हठवादी लोग अधिकमास होनेसे १३ महिनोंके क्षामणे कैसे होसके वगैरह जो जो कुयुक्तियें करते है, उन सबका विस्तारसे खुलासा उत्तर हमारा बनाया बृहत् "पर्युषणा निर्णय" नामा ग्रंथमें लिखा गयाहै, और संक्षेपमें फिर "लघुपर्युषणानिर्णय"के दूसरे अंकमें लिखनेमें आवेगा। मोक्षाभिलाषी, आत्मार्थी, निष्पक्षपाती, भव्य जीव होगा सो तो इस लेखको बांचकर कदाग्रह और कुयुक्तियें छोड़कर अवश्यही सत्य ग्रहण करेगा। पक्षपात छोड़कर सत्य ग्रहण करना यही सच्चे जैनीका काम है।

इति-श्रीमत् सुमतिसागरोपाध्यायाना लघुशिष्य मुनि-मणीसागरकृतो-लघुपर्युषणा-निर्णयस्य प्रथमांक समाप्त.॥

निवेदनपत्रिका.

विदांकुर्वन्तु विद्वांसः, पर्य्युषणाराधनं कदा कर्तव्यमिति, संदिहानो मुनिवरानन्वेष्टुं कुत्रचित्गतः, तत्र च पृष्टेन केनचिन्मुनिवरेणोक्तं तदित्थम्, द्वितीयभाद्र एव कर्तव्या पर्य्युषणा इति (संदिहानः) अत्रांशे किं प्रमाणम् (मुनिः) जिज्ञासुं प्रत्येवं वक्ष्यामीति विज्ञेयम् (संदिहानः) ज्ञातुमिच्छैव तु जिज्ञासा एवंचेत्तर्हि मयि ज्ञातुमिच्छा वर्तत एवेति। वक्तव्यं प्रमाणं (मुनिः) अत्राप्यस्माकमिच्छा (संदिहानः) उक्तं भवता जिज्ञासुं प्रत्येवं वक्ष्यामीति प्रतिज्ञाय पुनः सत्यात् प्रचलितः (सक्रोधो मुनिः) एतेन समायातो भवान् खरतरगच्छपक्षावलम्बीति (संदिहानः) तदेवास्तु किं तेन श्रीमान् धर्मप्रवर्तकः साधुशब्दं बिभर्ति अतो न्यायदृष्ट्या धर्मविषयकपूर्वपक्षस्य सर्वं प्रत्युत्तरं दातव्यमिति (सक्रोधो मुनिः) अत्रान्येपि साधवः सन्ति तान् प्रत्येवं निर्णेतव्यम् नास्माकं समयोस्ति (संदिहानः) श्रीमान् सर्वश्रेष्ठो विद्वत्सु जनैरभिमतोऽतः भवतैव चेद् न निर्णीयते तर्हि अन्येऽल्पज्ञाः कथं निर्णेतुं समर्था भविष्यन्ति इति स्वस्थानं व्रजामि मा भूत् क्रोधः, स्वस्थं भव क्षम्यताम्। अन्यत्र गत्वा दृष्टश्च पर्य्युषणापर्वनिर्णयः प्रथमाङ्कः मुनिना श्रीमणिसागरेण निर्मितः सत्प्रमाणैर्निबद्धोऽधिकमासस्वीकृतश्च अत्रेदमवधार्य्यम् येऽधिकमासं न स्वीकुर्वन्ति त इदं पुस्तकं समवलोक्य लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तु निश्चित्य त्यक्ष्यन्ति कदाग्रहमित्याशास्महे कल्पसूत्रादि पाठावलोकनान्निश्चीयते ५० दिन एव पर्युषणा कर्तव्या पूर्वभाद्र इति। येषां मतम् ८० दिन एव पर्युषणा कर्तव्या परभाद्र इति। तत्रांशे कस्यागमस्य प्रमाणमिति प्रकाशनीयं। श्रीमुनिवरं वल्लभविजयं प्रति प्रार्थनापुरःसरनिवेदनमेतत् श्रीमान् विद्वद्वरेषु श्रेष्ठतमोस्तीति जनैरुच्यते, अतो वयमाशां कुर्मः श्रीमद्भिरवश्यं द्वितीयभाद्रे पर्य्युषणाराधनं कर्तव्यमित्यत्रांशे त्वागमोक्तसत्प्रमाणं परिषत्समक्षं जनसमक्षं वा प्रकाशनीयमित्यलम् किं बहुना भवादृशेषु।

मिति श्रावण-शुद्ध-पूर्णिमा सं० १९७४.

भवदीय कृपाकाङ्क्षी—

पं० प्यारेलाल शर्मा रीवाँ-सम्प्रति-मुम्बई.

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला पु० नं ७९

श्रीमती
→* केशरश्रीजी *←
सुवर्णश्री

दानवीर जगडूशाह.

महात्मा,

छोगमल खजवाणा.

भूमिका।

जैन श्रीमाल-श्रीमालीजाति

प्यारे पाठकों यह वात कीसीसे छीपी हुइ नहीं है की अनादि कालसे प्रचलीत जैनधर्म अन्तिम तीर्थंकर भगवान् वीरप्रभु के समय तक चारो वर्णों इस पवित्र धर्मका सादर पालन करते थे. भगवान् वीर-प्रभु का निर्वाण के बाद करीबन् ३० वर्षों से पार्श्वनाथ संतानिये अर्थात् पार्श्वनाथ प्रभुके पांचवी पाट श्री स्वेयंप्रभसूरिजीने[1] श्रीमाल नगरके[2] यज्ञ में बलिदान के लिये एकत्र कीये हुवे सवालक्ष पशुओंको अभयदान दीरवा के अपने उपदेशद्वारा करीबन् ९०००० घरोवालोंको प्रतिबोध दे जैनी बनाया था वाद उस नगर के नामपर उन जैनोंकी श्रीमाल (श्रीमाली) जाति मुकरर करी थी उसी श्रीमाल जाति के अन्दर अनेक धर्म प्रभाविक नररत्न हुवे जिसके अन्दरसे श्रीमाल मुकुटमणि कुवेर जैसा दांनेश्वरी जिसकी परोपकार रूपी उज्वल कीर्ति आज भी भूमण्डलमें प्रसिद्ध है एसा दुनियोंमे कोन होगा की जो ' जगडूशाह ' को नहीं जानता हो. वि. सं. १३१२

१ ओसवंस स्थापक रत्नप्रभसूरिके गुरु थे।

२ हालमें जिसको भिन्नमाल नगर कहते हैं।

३ गुर्जरेश्वर महाराज विशलदेव और मन्त्री वस्तुपाल तेजपालकी सैन्य सहायतासे असंख्यद्रव्यके खरचासे कच्छ भद्रेश्वरका विशाल प्रकोट (सहेर पना) बनायके नागरिक लोगोंको सुखी वनाया था।

में बारावर्षका महाभयंकर दुष्कालने दुनियाँ मे हाहाकार मचा दीया था, जिस समय राजामहाराजा बादशाह और साधारण जनता को अन्न-दान दे के उनका प्राण बचाया था जिस जगडूशाहा की ख्यात का हस्तलिखित प्राचीन पाना हमारे प्राचीन पुस्तको मे मीला जाने से यह ज्यों का त्यो आप सज्जनों के करकमलों मे समर्पण कर मे अपना अहोभाग्य समझता हु. आशा है की आप इसको मनन पूर्वक पढके अपने पूर्वजोंके गौरवशाली कार्य का अनुकरण अवश्य करेंगे इत्यलम्

नोट—तपागच्छ वृद्धपटावलिमे राजा कुमारपाल के समयमे भद्रेश्वरनगरमे जगडुशाहा आचार्यश्री धर्मघोषसूरीकी कृपासे स १२११ से १२१५ तक पाच वर्षके दुष्कालमे वडा भारी दानेश्वरी हुवाथा परन्तु यह बात गलत है कारण जगडूशाहा राजा विसलदेवका राजमे हुवाथा विशलदेवका राज स १२९८ से १३१८ तक रहाथा और दुष्काल भी स १३११ से बारा वर्ष तक पडाथा इसका प्रमाणमे

" अठ य मुड सहस्स निसाल्गायस्स नार हम्मीरे "

पटावलि और ख्यात मे १०० वर्षका अन्तर है सौ वर्षोका अन्तरमे नगर और आचार्यका अन्तर होना स्वभावी है पटावलि से ख्यात बहुत प्राचीन और विश्वासपात्र है ॥

धन्यवाद—इस कीताब की छपाइ का खरचा एक शुभ दानवीरने दीया है उसको धन्यवाद दीया जाता है ।

'प्रकाशक'



श्री रत्नप्रभसूरीश्वर सद्गुरुभ्योनमः

अथश्री

दानवीर जगडूशाहाकी ख्यात.



कवित.

सुरत सेहर प्रसिद्ध जगत सगलो तसु जाणे ।
नागपुरी तपगच्छ सुगुरु सर्वदेव[1] व्याख्याणे ।
सूरीश्वर सरवसिरे विवध विद्या वरदाई ।
लब्धितणा भंडार वचनसिद्ध वयण सदाई ।

तपाविरुद्ध अतिशय अधिक ।
पंच सिधसाधु वले ।
तीणमें सुशिष्य सुन्दरगणि
नाम तसु गुण निरमले ॥ १ ॥

पूज्य रह्या चौमास संघ त्यां भक्ति करीजे ।
भवि जन सुणे व्याख्याण तसु प्रतिबोध देहीजे ।
इतरे एक श्रीमाल जगडू इण नामे आवे ।
सम्पत विन जिन राग ध्यान नित्य नवपद ध्यावे ।

१ श्री यशोभद्रसूरीने ८ मुनियोंको आचार्यपद स्थापित कीये थे उनोकी परम्परा में यह आचार्य है.

दुर्बल दयाल सत्यवत नर
पोण न सरे उदर भरण
व्यावच करे गुरु चैत्यनी
समकित पाय सेवे चरण ॥ २ ॥

एकदिन आखातीज जगडू पौशाले बेठो।
पडिक्कमणो गुरु पास करी जाय अलगो बेठो।
नवकरवाली हाथ जाप नवपद संभारे।
थाभारे ओठे बेठो उघ' ले रह्यो अन्धारे।

गुरु शिष्य तीके जाणे नहीं।
जाणे जां शाहा उठी गया
तीणदिने सुन्दर शिष्यसु
ज्योतिष जोय कीधि मया ॥ ३ ॥

सुन्दर सरस विचार जों ये चेला स्वर्ग जो तु।
तारामडल कीसु हुसी महारज के तु।
भद्रवाहुनी वार पड्यो तं काल ज पडसी,
खड हडसी भुपाल राक असुरो रडवडसी

लाख एक टकों हाडी चढे।
बिरलाको मानव रहै।
चहुदिश त्रीण त्रीण वर्ष लग।
द्वादश वर्ष सख्या गुरू कहै ॥ ४ ॥

चतुर न चुके दाव चुके जे चतुर ज केहवा ?
लीवे कीण विधलोक इन्द्र पण देगा छेहवा।
गुरु कहे मर गया लोक वर्ष दश जब निसरिया।
भद्रबाहु श्रुतसाध तीके पाटण सचरिया।

मधारे शाहा ते लेता थको।
कारूणा जग उपर करी।

---

१ निद्रा

ज्यार आणिये देवी प्रत्ये ।
नाम दीयो तसु जगउद्धारी ॥ ५ ॥

अब सुन्दर कहे बोल गुरु होव कीण विधकरणो ।
अन्न विण कीसो हवाल जगतको आयो मरणों ।
देखो वली गुरुदेव इसो कोइ कलि अवतारी ।
अभयदान दे अन्न जणीयों कोइ कुलमें नारी ।

अन्न विन मनुष्य जीवे नहीं ।
जीवे ते गुरु विधि कहो ।
उपकार सार करतो थको ।
सु यश सुरो नृपति लहो ॥ ६ ॥

गुरु कहे सुण शिष्य । वचन मुझ हृदय राखे ।
गुंज तणी यह वात । मति कीण आगे दाखे ।
जो थंभे तो एक । काल सिर भंजन ताहे ।
सो रहे इण पोशाल । जगडू एक जगत जीवाहे ।

दूजो कोइ सुरनर असुर
दुनियों मे देखु नहीं ।
सो शिष्य जाण तुझने कहुं ।
पुच्छीयों रो उत्तर सही ॥ ७ ॥

सुणी वात श्रीमाल । गुरो मुझ कीनी हाँसी ।
हुँ निर्धन कृत हिन । जाण इम थयो उदासी ।
नवकरवाला मेल । सुगुरु के चरणे आयो ।
आवंतो गुरु देख । हरप चितसे बतलायो ।

जागीयो भाग्य तहायरो जगडू
शाहा तुँ सघलो सिरे ।
हुसी न होड तो सम कीणी
इण कलयुग में केता फिरे ॥ ८ ॥

वचन सिद्धि वदत । जग जपे श्रीमाले ।
तीण वेला तीण वस्त्र । गाठ दिनी तत्काले ।
याचा अचचल स्वाम । वचन गुरु सफल फलीजे ।
भाग्य फले जिण भांत । तोसो गुण मुझ दाखीजे ।

परिचय बताय राखण सरम ।
भरम भांज मुझ मन तणो ।
ऋद्धि पाय खाय खरचु धर्म ।
हुँ श्रावक तुझ तन तणो ॥ ९ ॥

अखय अमृत धन पूरी । जगडू दश जाहाजो आवे ।
निशा[1] पवन प्रचड पुन्य तुझ सूर मीलावे ।
प्रह उगंते सूर निल ध्वज जाहाज पेच्छाणे ।
तेजम[2] देवल थांन तीका निशा तुँ घर आणे ।

मण मीतर पांच पकीयले ।
सेर पांच तोलज इसी ।
निशा में आण तोय घर उपरे ।
रति पक राखे मति ॥ १० ॥

सद्गुरु वचन सभाल निज घर जगडू आयो ।
मनमें अति उच्छरग निशागत दिवस उगायाँ ।

---

१ रात्री

२ मोना चार कारणमे हुवा करता है

१ पारसका स्पर्श होनेसे लोहाका सुवर्ण होजाता है
२ रसकुँपका सयोगसे
३ जडी–बूटीका प्रयोगसे
४ तेजमतुरीसे " तेजमतुरीसे हरेक मनुष्य सुवर्ण नहीं बना सका है सिद्ध रसायण विद्या–क्रियाके जाननेवालाही तेजमतुरीसे सुवर्ण बना सका है "

मंत्र जपे नवकार स्तवन श्री जिनवर गावे ।
पोरसीको पच्चक्खाण करी गुरु भावना भावे ।
उठीयो हीवे उद्यम करण ।
जाहाज आय उदधे खडी
विकी वस्तु आवंत समय
तेजम नाखी तीण घडी ॥ ११ ॥

देखर आयो दिवस मिल्या मुक्त सद्गुरु साचा
परिचय पायो पुर वडों किम विकटे वाचा
रात पडि तीण वार त्रीया निज साथे आणीं
पोटलीयों दश पांच पोट सिर धरे त्रीणयागी ।
आवियो रात गुरु ने कहे ।
लायो हुं तेजमतुरी
गुरु कहे लोहाने लाल कर
फरस रेत सोवन करी ॥ १२ ॥

प्रातःकाल शुद्ध लोह आण घरमे प्रछन्ने ।
मेल खीरा अंगार धमे आप तेज आगने ।
तेजमतुरीनी रास मांहे ते फाल्या[१] राले ।
सरव निपनो हेम होय तव मुसो गाले ।
विलगा सोनार शत पांचसो.
मीहरां से कोटा भरे
तत्काल आय जगडू घरे
लक्ष्मी अति लीला करे ॥ १३ ॥

हुइ वात दरबार जगडूने तुरत बुलावे ।
सोनइया लख एक भेट ले वेगो आवे ।

---

१ लोहके खंड. २ कर तेजमतुरीमे डांल सुवर्ण बनायों.

देख्यो जब दीवान मीली कोइ देवजमाया।
रक थकी राजान करी तीण खेल देखाया।

दीवान आय सामो मील्यों
अग्रे कर आसन धरे।
धन समो कुण नमारमें।
धन सगलो जग वस करे। ॥ १४ ॥

जो कोइ मागे आय। दालिद्र तेनो दु ख कापे।
राय राणा सुलतान। दूर[3] त्या भोजन आपे। ३
पसरी चहुदिश वास[4]। दीन जन बहुला आवे।
खान पान प्रधान। साधु शुद्ध आहार ज लावे।

नव खण्ड नाम प्रगट्यो सुयश।
कीर्ति चहुदिश समुद्रां परे।
श्रीमाल गौत्र सोलाहा सुतन।
पुन्य योग्यरा जम करे ॥ १५ ॥

॥ अन्नसरीदी देशवर्णन कवित।

सिरे सौरठ गुजरात अन्नने भोजन कापे।
जैसलमेर थैराट थलि सब आपण थापे।
मारवाड ढुढाड मेवाड मे सचय कीधो।
मालवे दक्षण गोड दीलि अन्न सगलो लीधो।

गजण वा सुलतान जग
चहु खुटे अन्न संचियो
जगड वा शाहा सोलाहा नणो
सुघो मुगो सब लियो ॥ १६ ॥

---

३ बहुतसो ४ कीर्ति ५ सोलाहा शाहाका पुत्र जगड शाहा थे

जिण देसे जिण गाम धांन कोठार भराया
तीणमें तांवा पत्र लिख इम नाम दराया।
जगडवे संचियो अन्न जको यों रांको निमंते ।
जों खावे रांक राव पुन्य हो जो पुन्य थंते ।

इम लिख्या पत्र तांवा तणा।
अन्न ले सगलो गाडीयो[1]।
तीण दिवस थकी सोलाहा सुत
शत्रु कार[2] छिवे माडीयो

॥ कालवर्णन कवित ।

पडे तीन दुकाल राय गंजन सौरठे ।
पडे तीन उत्तराद अन्न रसटले विसटे
पडे तीन पूर्वाद अन्न आख्यां नही दीठो ।
पडे तीन पश्चमाद पाप[3]यों पृथ्वी पीठो।

एक एक खंड विखण्ड हुवा
कर गृह जग उपर कीयो
जगडवा शाहा सोलाहा तणो
दान राव इण परदीयो ॥ १८ ॥

॥ धानभाव वर्णन कवित ।

प्रथम रूपैय मण धान भाव दो तीन चार भणीजे।
पंच छे पसरंत मोल त्यां सेर लहो जे।
सातों आठो साच अन्न मुहुगो था वोंणो
नवदश निरखंत जगमें अन्न दुष[4] केयांणो

१ सांडोमें तथा कोठारोमें २ दानशाला ३ काल. ४ दुर्लभ.

सुवर्णे[1] अन्न महुघो थयो
लोभे अन्न भोलावीयो
सगडशाशाहा सोलाहा तणे
तीण समय जगत जीवाडीयो ॥ १९

रूपा सम कोण शाहा तव अन्न मोलन्न लाधो।
सोना सम सुलतान मोल निच्छ रावल दे लाधो।
हीन्न ढगीया सुलतान राय लेखे कुण आणे।
धर्मी चुका धर्म जगड़ विण पडेकु खाणे।

सुलताण राव राजा सवे
जगडूसे अरजी करे
प-देश लो मुझ धान द्यो
राज लोक भुखों मरे ॥ २० ॥

॥ दानवर्णन कवित ॥

लग जपे श्रीमाल शाहा नृपति सुलताणो।
थे आया अन्न काज अन्नरो नवि म्हे नाणो।
भा-अन्न राको काज सकल्प कीनो जो साधो।
लो नवि मानो वात पत्र कहाडीने वाचो।

वाचीया पत्र कोडी तणा।
देश देश पुर ग्राममें।
मंडीयो हाथ जगने वदे।
रक यह लोक वड राकमे ॥ २१ ॥

---

1 सोनाम भी मुहघो अन्न हुआ

राजादिकों अन्नदान वर्णन कवित ।

मुंढा आठ सहस्र दीधा विशाल वणवीर है ।
चारा मुंडा सहस दिध सिद्ध वो हमीर है ।
गंजणवे सुलताण सहसमुंडा इकवीसे ।
मालवे सहस पचवीस सहस मेवाड वतीसे ।

राय साधार[3] इणपरे हुवो
तेरे सो वाडोतरे (१३१२)
जगडवे शाहा सोलाहातणे
कींधो नाम पनडोतरे (१३१५) ॥ २२ ॥

तोल वर्णन कवित ॥

बारा मण रो तोल जीको एक माणि जाणो
सो माणि जव तोल मणासो एक प्रमाणा ।
सो मणासो मान मुंडो एक तोल लहिजे
जगडू दीनो अन्न इसीपरे संख्या कीजे ।

राय साधार इणीपरे हुवो
तेरेसो वाडोत्तरे (१३१२)
श्रीमाल शाहा सोलाहातणो
दीनो दान पन्नडोत्तरे ॥ २३ ॥

॥ प्रज्याने अन्नदान वर्णन ॥

असी अडव ने एक साठ जिण कोड समप्पे ।
वीस तीस पचवीस अंक कोड इतरा आप्पे ।

---

२ सब राजाओंको ९८००० मुंडाधान दिनो एक मुंडामें धान मण १२००००
सर्व धान ११७५०००००२० मण हुवा.

३ राव राजा महाराजा को आधार जगडुशाहाका हुवा था.

सीत्तर त्यारा पमट सहस अन्न नरव्या पती ।
जगडू जगत जीवाडायों सयल जण पृथ्वी महैती ।
पलक हुवो जग पेखतों
कर ग्रह जुग नामो कीयों
जगडया शाहा मोलाहातणो
प्रत्याने दान इतरा दीयो ॥ २४ ॥

॥ कालवर्णन कवित ॥

स्वर्गहुति सचरे देश पडीयो दुकाल है ।
वडा सेहर उजड करे सरणागत श्रीमाल है ।
अन्न करे अधुल धराधर निरजीवावु ।
के भाजु वेराद के जीवतो घर आवु ।
पापीयो पडोयों पृथ्वी तले ।
बोल बन्ध बांध्यो खरो
जगडया जाण दे जीवतों ।
चले न आवु काल पनडोत्तरे ॥ २५ ॥

इन्द्र कहे सुणो देव एक में अचरज दीठो ।
मो पहलो इण इला वहो कोण पावस भुठो ।
नरा इन्द्र अहचीयो मर्थ देश हुवो सुकाल हैं ।
मेघमाली आवीने तीण जल कीनो दगचाल है ।
वरसाला विण वादो वदीयों ।
जद पटान्तर जाणीयो ।
जगडया नर जगत उद्धर्यो ।
आपो इन्द्र व्याख्याणीयो ॥ २६ ॥

सद्‌गुरु तणो उपदेश सात खेत्र धन खरचे ।
पूजा करे त्रीकाल अष्टविधि जिनवर अरचे ।

देयल सीतर कराय नवसो बिम्ब भराया ।
संघ चतुरविध मेल शाहा शत्रुंजय आया ।

पूजीया रिखभ उच्छरंगसु ।
भाव युक्ति निर्मल मने ।
दीजिये मोक्ष जगडु कहे ।
और न मांगु तुझ कने ॥ २७ ॥

बरस बहोतर आव मास पट् दाहाडा उपर ।
जगडु कीधो काल धरातल धूजि थरहर ।
दिवस थयो अन्धीयार तीन दिन सबही हारे ।
सगले हा-हाकार सुणीयो सुलताण तीवारे ।

अरहीया शाहा राजा सकल
राजलोक दोरो कीयो
निज खवास अमरावका
सुणत प्रमाण फाटो हीयो ॥ २८ ॥

गच्छ पुनमे हेमेन्द्र सूरीवल विद्या पुरो ।
कुमारपाल प्रतिबोध कीयो जैन धर्म सनूरो ।
चन्द्रगच्छ धनेश्वर सूर भीममंत्री तीणवार है ।
एट् दुणा बादशाहा बोध नीकया तीणवार है ।

वस्तपाल तेजपाल भला
पग पग धन निकलयो
पण जगडु दांनकीर्ति सुण
कांइक सूरो आगे गणीयो ॥ २९ ॥

इति श्रीमाली वंस भूषण दानवीर जगडुशाहाकी ख्यात

समाप्तम्.

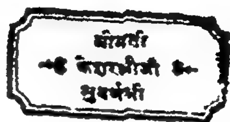
॥ श्री ॥

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला ऑफीस फलोदीमे आजतक पुस्तकें प्रसिद्ध हुइ जिस्का.

सूचीपत्र

इस संस्थाका जन्म-पूज्यपाद परमयोगिराज मुनिश्री रत्न विजयजी महाराज तथा मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराजके सदुपदेशसे हुआ है. सस्थाका खास उद्देश छोटे-छोटे ट्रेक्ट द्वारा समाजमें ज्ञानप्रचार बढानेका है इस संस्था द्वारा ज्ञानप्रचार बढानेकी प्रयन सहायता फलोदी-श्री-सघकी तर्फसे मिली है, वास्ते यह संस्था फलोदी श्री सघका महर्ष उपकार मानती है।

संख्या	पुस्तकोंके नाम	कीमत	संख्या	पुस्तकोंके नाम	कीमत
१	श्री प्रतिमा छत्तीसी	)०॥	१७	चौरासी आशातना	भेट
२	गयवर विलास	।)	+१८	टंकेपर चोट	भेट
३	दान छत्तीसी	)०॥	१९	आगमनिर्णय प्रथमांक	=)
४	अनुकम्पा छत्तीसी	)०॥	२०	चैत्यवन्दनादि	भेट
५	प्रश्नमाला प्रश्न १००	-)	२१	जिन स्तुति	भेट
६	स्तवन संग्रह भाग १ ला	=)	२२	सुबोध नियमावली	भेट
७	पैंतीस बोलोंका थोकडा	=)	२३	जैन दीक्षा प्रथमांक	भेट
८	दादा साहिबकी पूजा	=)	२४	प्रभु पूजा	भेट
+९	चर्चाकी पब्लिक नोटीस	भेट	+२५	व्याख्याविलास प्र० भा०	=)
१०	देवगुरु वन्दनमाला	-	२६	शीघ्रबोध भाग १ ला	।)
११	स्तवन संग्रह भाग २ जो	=)	२७	शीघ्रबोध भाग २ जा	।)
१२	लिंगनिर्णय बहुत्तरी	-)	२८	शीघ्रबोध भाग ३ जा	।)
१३	स्तवन संग्रह भाग ३ जो	-)	२९	शीघ्रबोध भाग ४ था	।)
१४	सिद्धप्रतिमा मुक्तावली	॥)	३०	शीघ्रबोध भाग ५ वा	।)
+१५	बत्तीस सूत्र दर्पण	≡)	+३१	सुखविपाक सूत्र	।)
१६	जैन नियमावली	भेट	३२	शीघ्रबोध भाग ६ ठा	=)
			३३	+दशवैकालिक मूल सूत्र	=)



भावप्रकरणम् ।

श्री सुखसागर ज्ञानबिन्दु नम्बर २

श्रीमत्सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः

श्रीमद् विमलविजयगणि विरचितम्—

भावप्रकरणम्।

संशोधक,

खरतरगच्छीय श्रीमान् हरिसागरजी म०

द्रव्य सहायक,

शाह चांदणमलजी जमनालालजी पारख.

मु० लोहावट.

प्रकाशक,

श्रीसुखसागर ज्ञानप्रचारक सभा.

मु० लोहावट—(मारवाड)

प्रथमावृत्ति १००० — विक्रम सं १९८६

मूल्य मनन।

प्रस्तावना.

मान्यवर सुज्ञ सज्जनो !

आप साहेबोंके कर कमलोंमें यह सुखसागर ज्ञान प्रचारक सभाका द्वितीय विन्दु सादर समर्पण किया जाता है. यह लघु प्रकरण होनेपरभी इनका गौरव महत्वत्ता और भावोंकी विशुद्धि आदि अनेक सद्गुणोंसे विभूषित है. वह सब इन्हें आद्यन्त पढ-नेसे आपको अच्छी तरहसे ज्ञात हो जावेगा.

इन लघु प्रकरणमें पांच भावोंका वर्णन विस्तारपूर्वक बहुत ही सुयोग्यताके साथ युक्तिपूर्वक किया गया है इसी लिए इनका नाम भाव प्रकरण रक्खा है. इनके कर्त्ता श्रीमान् विमलविजयजीग णीने स्वआशय स्पष्टतया प्रगट करनेके लिए स्वोपज्ञावचूरि लिखी है, वह अवचूरि सामान्य संस्कृत के ज्ञाता भी अच्छी तरहसे पढ सकतेहै और भाव प्रकरणके भावोंको भी समझ सकते है, इस-लिए आप सकते है और महानुभावके उपकृतिके हम उऋणी है.

हमें आशा है कि आप इन भावप्रकरणको अवलोकन कर इसे फायदा जरूर उठावेंगे. यह आप विद्वानोंके सुविधाके लिए ही कार्य किया है. इन्हें आप अन्यथा नहीं जाने देंगे. ऐसा हमे पूर्ण भरोसा है किम्बहुना !

श्रीमान् जमनालालजी इन्द्रचन्द्रजी पारख मारवाड लोहावट निवासीने इन ग्रंथके प्रकाशनमें अपनी चंचल लक्ष्मीकों अचल बनानेका प्रयत्न कर इन संस्थाको अपूर्व साहस व सहायता पहुंचाई है इसलिए हम आप साहेबोंका सहर्ष स्वागत करते है और सहस्रशः धन्यवाद देते है. और अन्य सज्जनोंको भी इनका अनुकरण करनेकी विनन्ती कर विराम लेते हैं.

आपका:—

छोगमल कोचर.



परमगुरु श्रीमद् सुखसागरसद्गुरुपादपद्मेभ्यो नमः ॥

श्रीमद्विजय विमलगणिविरचित

॥ श्री भावप्रकरणम् ॥

—※—

(स्वोपज्ञावचूर्या समलंकृतम्)

आणंदभरिअनयणो, आणंद पाविऊण गुरुवयणे ।
आणंदविमलसूरिं, नमिउं वुच्छामि भावे अ ॥ १ ॥

अवचूरिः—नत्वा श्री जिनमभय-मानन्द विमलगुरुं च सूरीशम्-स्वोपज्ञप्रकरणमिदं सुगमं व्याख्यायते किञ्चित् ॥ १ ॥ आनन्दविमलसूरिं नत्वा 'भावे' इति औपशमिकादीन् भावान् वक्ष्ये, किम्भूतोऽहम्? आनन्दभृतनयनः पुनः किं कृत्वा? गुरुवचने श्री आनन्दविमलसूरिपुरन्दरादेशरूपवचने आनन्दं प्राप्य हर्षं प्रकर्षमासाद्येति ॥ १ ॥ अथात्र तावद् द्वारगाथामाह—

धम्माऽधम्मागासा, कालो खंधो य कम्म गइ जीवा ।
एएसु अ दारेसु अ, भणामि भावे अ अणुक्कमसो ॥ २ ॥

अवचूरिः — तत्र ' धम्म ' इति पदैकदेशे पदसमुदायोपचाराद् धर्मास्तिकायः। जीवपुद्गलानां गतिपर्याये धारणाद्धर्मः। अस्तिशब्देन प्रदेशा उच्यन्ते, अतस्तेषां कायः समूहः अस्तिकायः, धर्मश्चासावस्तिकायश्च धर्मास्तिकायः। अथवा अस्तीत्ययं निपातः कालत्रयाभिधायी ततोऽस्तीति, अस्ति आसीत् भविष्यति च यः कायः प्रदेशराशिः सः अस्तिकाय इति धर्मश्चासावस्तिकायश्च धर्मास्तिकायः। अयं भावः-जीवानां पुद्गलानां च गमनं कुर्वतं यद्द्रव्यं साहाय्यं ददाति, यथा मत्स्यानां जलं स धर्मास्तिकाय इत्यर्थः १। ' अधम्म ' इति जीवपुद्गलानां स्थित्युपष्टम्भकारी अधर्मः, शेषं प्राग्वत्, अधर्मश्चासावस्तिकायश्च प्रदेशराशिरिति अधर्मास्तिकायः अयं भावः—यद्द्रव्यं जीवपुद्गलानां स्थितिं कुर्वतां सान्निध्यं ददाति, सः अधर्मास्तिकाय इत्यर्थः २। एतौ द्वावपि लोकव्यापिनौ असङ्ख्यप्रदेशात्मकाविति। ' आगास ' इति आ मर्यादया अभिविधिना वा सर्वेऽर्थाः काशन्ते प्रकाशन्ते स्वं भावं लभन्ते यत्र तदाकाशम् आकाशं च तदस्तिकायश्चाकाशास्तिकायः। अयं भावः, जीवपुद्गलानां यदवकाशं ददाति तदाकाशमित्यर्थः, इदं च लोकालोकव्यापि, अनन्तप्रदेशात्मकमिति ३। धर्मश्चाधर्मश्चाकाशं च धर्माधर्माकाशानीति। ' कालो ' इति कलनं कालः, स च द्विधा वर्तनादिलक्षणः १ समयावलिकादिलक्षणश्च २। तत्र वर्त्तन्ते भवन्ति भावास्तेन तेन रूपेण तान् प्रति प्रयोजकत्वं वर्त्तना, सा लक्षणं लिङ्गमस्येति वर्त्तनालक्षणः, अयं समस्त द्रव्यक्षेत्र भावव्यापीति १। समयावलिकादिलक्षणस्तु कालः समयक्षेत्रान्तर्वर्त्तिद्रव्यादिष्वस्ति बहिर्वर्त्तिषु तु नास्तीति २। ४ ' खंधो य[१] ' इति द्व्यणुकाद्यनन्ताणुकपर्यन्ताः स्कन्धा अणवश्च ५। ' कम्म ' इति अञ्जन चूर्ण

---

१ ' पुग्गल य ' इत्यपि पाठः। २ ' पुद्गलस्कन्धा ' इत्यपि पाठः।

पूर्णं समुद्गकवन्निरन्तरं पुद्गलनिचिते लोके चतुर्गतिकेन जीवेन हेतुभिर्मिथ्यात्वाविरत्यादिभि सामान्यं 'पडिणीयत्तणनिन्हव' इत्यादि विशेषरूपैश्च बन्धाय पिण्डवदात्मसम्बद्धा कर्मवर्गणा क्रियन्त इति कर्म। तच्चाष्टधा तथाहि ज्ञायते परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति ज्ञानम्। सामान्य विशेषात्मके वस्तुनि विशेषग्रहणात्मको बोध। आव्रियतेऽनेनेत्यावरणं मिथ्यात्वादि सचिवजीव व्यापारा हृतकर्म वर्गणान्त पाती विशिष्ट पुद्गलसमूहः, ज्ञानस्यावरणं ज्ञानावरणम् १। दृश्यतेऽनेनेति दर्शनम्, सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि सामान्यग्रहणात्मको बोधस्तस्यावरणं दर्शनावरणम् २। वेद्यते आह्लादादिरूपेणानुभूयते यत्तद्वेदनीयम्, यद्यपि सर्वमपि कर्म वेद्यते तथापि पङ्कजादिशब्दवत सातासातस्यैव वेदनीयत्वम ३। मोहयति सदसद्विवेकविकलं करोत्यात्मानमिति मोहनीयम ४। इ (ए) ति गच्छति प्रतिबन्धकतां नारकादि कुगतेर्निष्क्रमितुमनसोऽपि जन्तोरि त्यायु। यद्वा एति गत्यन्तरं मनेनेत्यायु ५। नामयति गत्यादिपर्यायानुभवनं प्रति प्रवणयति तत्पर करोति जीवमिति नाम ६। गूयते शब्द्यते उच्चावचै शब्दैरात्मा यस्मात् तद् गोत्रम् ७। विशेषेण हन्यन्ते दानादिलब्धयोऽनेनेति विघ्नम् ८। ६ 'गइ' इति गम्यत इति गति, नारक १ तिर्यग् २ मनुष्य ३ देव ४ सिद्धिगति ५ भेदात् पञ्चधा ७। 'जीवा इति जीवन्ति सर्वकाल आयुष्कर्मानुभवादिलक्षणान् द्रव्यप्राणान, ज्ञानादिभावप्राणांश्च धारयन्तीति जीवा' संसारिण। मुक्तास्तु जीवन्ति 'ज्ञानदर्शनभावप्राणान् धारयन्तीति जीवा'। जीवा अत्र चतुर्दशगुणस्थानवर्तिनो ग्राह्या, नत्वेकेन्द्रियादय ८। एतेषु पूर्वोक्त धर्मास्तिका-

१ ' इत्यन्न आसतणी ' इत्यपि पुस्तकान्तर पाठ.

यादिषु अष्टद्वारेषु औपशमिकादीन् भावान् अनुक्रमेण भणामि कथयामीत्ति द्वारगाथा ॥ २ ॥ अथ पूर्वोक्तगुणस्थान गाथा—

मिच्छे[1] सासणमीसे[3], अविरयदेसे पमत्त अपमत्ते ।
निअट्टि अनिअट्टि सुहुमु–वसम खीण सजोगि अजोगिगुणा॥३॥

अवचूरिः—'गुणा' इति गुणस्थानानि । ततः सूचनात् सूत्रमिति न्यायात्, इहैवं गुणस्थानक निर्देशो द्रष्टव्यः । तद्यथा–मिथ्यादृष्टि गुणस्थानम् १ । सास्वादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् २ । सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् ३ । अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानम् ४ । देशविरतिगुणस्थानम् ५ । प्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ६ । अप्रमत्तसंयतगुणस्थानम् ७ । अपूर्व करणगुणस्थानम् ८ । अनिवृत्तिवादरसंपरायगुणस्थानम् ९ । सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानम् १० । उपशान्तकषाय वीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानम् ११ । क्षीणकषाय गुणस्थानम् १२ । सयोगिकेवलिगुणस्थानम् १३ । अयोगिकेवलिगुणस्थानम् १४ । एषां व्याख्या कर्मग्रन्थटीकादेरवसेयेति ॥ ३ ॥ अथ प्रथममौपशमिकादीन् षण्मूलभावानाह—

उवसमखइ ओ मीसो, उदओ परिणामसन्निवाओ य ।
सव्वे जीवट्ठाणे, परिणाममुदओ अ जीवाणं ॥ ४ ॥

अवचूरिः—तत्रोपशमो विपाकप्रदेशरूपतया द्विविधस्याप्युदयस्य विष्कम्भणं, तेन निर्वृत्त औपशमिकः, औपशमिक सम्यक्त्वादिः कालतः सादिसपर्यवसानः १ । क्षयः कर्मणोऽत्यन्तोच्छेदस्तेन निर्वृत्त क्षायिकः । तत्र क्षायिकं चारित्रं दानादि लब्धिपञ्चकं च । क्षायिको भावः कालतः सादिसपर्यवसानः, क्षायिकानि ज्ञानदर्शनसम्यक्त्वानि तु कालतः साद्यपर्यवसानानि २ । क्षयेणोदीर्णस्यानुदीर्णस्य चोपशमेन निर्वृत्तो मिश्रः, क्षायोप-

शमिक । तत्र ज्ञानचतुष्कं विभङ्गज्ञान, चक्षुरचक्षुरवधि दर्शनानि, देशविरतिसर्वविरतिक्षायोपशमिकसम्यक्त्व दानादिलब्धिपञ्चकानि च, क्षायोपशमिको भाव कालत सादि सपर्यवसान, मत्यज्ञानश्रुताज्ञाने भव्यानामनादिसपर्यवसान, एते एवा भव्यानामनाद्यपर्यवसा ३। उदय शुभाशुभप्रकृतीना न विपाकतोऽनुभवन तेन निर्वृत औदयिक । तत्र नारकादीना नारकगत्यादि औदयिकभाव सादिसपर्यवसान मिथ्यात्वादिक औदयिकभावो भव्यानामनादिसपर्यवसान, स एवाभव्यानामनाद्यपर्यवसान ४। परि समन्तान्नमन जीवानामजीवाना च जीवत्वादिस्वरूपानुभवन प्रति प्रह्वीभवनं परिणामस्तेन निर्वृत्त पारिणामिक पञ्चम । तत्र पुद्गलकाये द्यणुकादि पारिणामिको भाव न कालत सादिसपर्यवसान भव्यत्व भव्यानामनादिसपर्यवसान, [1]अभव्यत्वजीवत्वे पुनरनाद्यपर्यवसान ६। अत्र चतुर्भङ्गीस्थापना ।

सादिसपर्यवसान	औपशमिके १
साद्यपर्यवसान	क्षायिके १-२
अनादिसपर्यवसान	क्षायोपशमिके१ ३ ४
अनाद्यपर्यवसान	औदयिके १ ३-४
	पारिणामिके १ ३-४

'सन्निवाओ' इति एतेषा सन्निपातैर्द्व्यादिसयोगैर्निष्पन्न षष्ठ सान्निपातिको भाव, स च षड्विंशतिधा । तत्र द्विकसयोगा दश यथा

औपक्षायिक १। औप-क्षायोप २। औप-औद ३। औप-पारि ४। क्षायि-क्षायोप ५। क्षायि-औद ६। क्षायि-पारि ७। क्षायोप-औद ८। क्षायोप-पारि ९। औद-पारि १०। त्रिकसयोगा दश यथा—औप-क्षायिक-क्षायोप १। औप-क्षायिकऔद २।

१ 'अभव्य जीवत्वम्' इत्यपि पुस्तकान्तरे पाठ ।

औप-क्षायि-पारि ३। औप-क्षायोप-औद ४। औप-क्षायाप पारि ५। औप औद-पारि ६। क्षायि-क्षायोप-औद ७। क्षायि-क्षायोप-पारि ८। क्षायि-औद पारि ९। क्षायोप औद-पारि १०। चतुः संयोगिकाः पञ्च यथा—औप-क्षायि-क्षायोप-औद १। औप-क्षायि-क्षायोप-पारि २। औप क्षायि औद पारि-३। औप क्षायोप औद पारि ४। क्षायि क्षायोप औद पारि ५। पञ्चसंयोगिक एकः। औप-क्षायि-क्षायोप-औद पारि १। एवं सर्वे षड्विंशतिर्भेदाः २६। एकत्वे सन्निपातो न भवति, द्विकादि संयोगाभावादिति। अत्र द्विकसंयोगमध्ये सप्तमो भङ्गः सिद्धानाम् १। त्रिकसंयागमध्ये नवमो भङ्गः केवलानाम् २। त्रिकसंयोगमध्ये दशमश्चतुर्गतिषु ३। चतु संयोगमध्ये चतुर्थः पञ्चमश्च चतुर्गतिषु प्राप्यते ४। ५। पञ्चसंयोगिक एको नराणामुपशमश्रेणौ प्राप्यते ६। एते षड्जीवानां सम्भवन्ति। शेषा विंशतिर्जीवानां न सम्भवन्तीति सर्वे पूर्वोक्ता मौलषड्भावा जीवस्थाने भवन्ति। तथा पारिणामिकभाव औदयिकश्च भावोऽजीवानां भवतो नान्ये ॥ ४ ॥ व्याख्याता मूलभेदाः, अथैतेषां मौलभेदानामुत्तर भेदानाह—

केवलनाणं[1] दंसण[2] खइयं सम्मं[3] च चरणदाणाई[4]।

नव खइआ[5] लद्धीओ उवसमिए सम्म चरणं च ॥ ५ ॥

अवचूरिः—अत्र गाथानुलोम्यात् औपशमिके भावे प्रथम सम्यक्त्वोत्पत्तिकाले औपशमिकं सम्यक्त्वं भवति। उपशमश्रेण्यां चौपशमिकं सम्यक्त्वमौपशमिकं च चारित्रं भवतीति भेदद्वयम् १। अथ क्षायिकस्योत्तरभेदा नवं[1] यथा—केवलज्ञानावरणक्षयात्के-

१ 'यथा नव लब्धयः चायिक्यो यथा' इत्यपि पाठः।

वलज्ञानम् १ । केवलदर्शनावरणक्षयात्केवलदर्शनम् २ । दर्शनमोहक्षयजं क्षायिक सम्यक्त्वम् ३ । चारित्रमोहनीयक्षयोत्थ क्षायिक चरणम् ४ । दानादि पञ्च विधान्तरायक्षयजा दानलाभ भोगोपभोगवीर्यरूपा पञ्च लब्धय इति ॥ २ ॥ ५ ॥ अथ क्षयोपशमस्योत्तर भेदा अष्टादश यथा—

नाणा चउ अण्णाणा, तिण्णि य दंसणतिग च गिहिधम्मो ।
वेअगमचारित्त, दाणाइगं मिस्सगा भावा ॥ ६ ॥

अवचूरि —मिश्रगा क्षायोपशमिकभावा यथा—मति १ श्रुत २ अवधि ३ मन पर्याय ४ लक्षण ज्ञानचतुष्कम्, त्रीण्यज्ञानानि ३ च, एतानि मत ज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमसम्भूतानि । चक्षुरचक्षुरवधिलक्षण दर्शनत्रिक दर्शनावरणकर्मक्षयोपशमजम् ३ । गृहस्थधर्मो देशविरति १ । वेदकं क्षायोपशमिक सम्यक्त्व म् २ । सर्वचारित्र सर्वविरतिरूपम् ३ । तत्र वेदक दर्शनमोहक्षयोपशमजम् । देशविरति सर्वविरतिश्च चारित्रमोहक्षयोपशमजे । दानादिकलब्धय पञ्च, पञ्चविधान्तरायक्षयोपशमजा । इह दानादि लब्धयो द्विधा, अन्तरायकर्मण क्षयसम्भविन्य क्षयोपशमसम्भविन्यश्च । तत्र या क्षायिक्यस्ता पूर्वमुक्ता केवलिन एव । या पुनरिह क्षायोपशमिकान्तर्गता उच्यन्ते, ता क्षयोपशमजाश्छद्मस्थानामेवेति ३ ॥ ६ ॥ अथौदयिकस्योत्तरभेदा यथा—

अन्नाणमसिद्धत्ताऽसंजम लेसा कसाय गइ वेया ।
मिच्छं तुरिए भव्वा-भव्वत्त जियत्त परिणामे ॥ ७ ॥

अवचूरि —तुर्ये औदयिके भावे एकविंशतिर्भेदा यथा—अज्ञानं १ असिद्धत्व २ असंयम ३ लेश्याषट्क ९ कषायाश्चत्वार. १३ नारकादिगतिचतुष्कं १७ पुरुषवेदादिवेदत्रय २० मिथ्यात्वं

२१ चेति। तत्राज्ञानं मिथ्यात्वोदयजम् १। असिद्धत्वमष्टविधकर्मोदयजम् २। असंयमोऽविरतित्वं प्रत्याख्यानावरणकषायोदयात् ३। लेश्याः कषायमोहनीयोदयात् १३। गतयो गतिनामकर्मोदयात् १७। वेदा नोकषायमोहनीयोदयात् २०। मिथ्यात्वं मिथ्यात्वमोहनीयोदयादिति २१। उपलक्षणत्वान्निद्रापञ्चकसातासाताहास्यरत्यरत्यादयो भावाः कर्मोदयजन्या अन्येऽपि बहवो द्रष्टव्याः। एकविंशतिसङ्ख्यानिर्देशस्तु पूर्वशास्त्रानुसारादिति ४। अथ पारिणामिकस्योत्तरभेदानाह—पारिणामिके भावे त्रयो भेदा यथा—भव्यस्य भावो भव्यत्वम् १। एवमभव्यत्वं २ जीवत्वं ३ चेति। एषामित्थमेव सदा परिणमनात् नहि भव्योऽभव्यत्वं जीवोऽजीवत्वं च कदाचित्परिणमति ५॥ तदेवं सर्वेऽपि भावपञ्चकभेदास्त्रिपञ्चाशद् ५३। इति ॥ ७॥ उक्ता मौलभेदानामुत्तरभेदाः। एषां च यन्त्रकं यथा—

औपश०	क्षायिक	क्षायो प.	औद यि.	पारि.	सर्वे.
२	९	१८	२१	३	५३

अथ धर्मास्तिकायादिष्वष्टद्वारेष्वौपशमिकादिभावानाह—

आइम चउदारेसु य, भावो परिणामिगो य णायव्वो।
* खंधे परिणामुदओ, पंचविहा हुंति मोहंमि ॥ ८॥

अवचूरिः—आदिमचतुर्द्वारेषु धर्म्मास्तिकाया १ अधर्मास्तिकाया २ आकाशास्तिकाय ३ काल ४ लक्षणेषु चतुर्द्वारेष्वेकः पारिणामिको भावो ज्ञातव्यः। तथाहि—धर्माधर्माकाशास्तिकायानामनादिकालादारभ्य जीवानां पुद्गलानां च गतिस्थित्युपष्ट-

* 'पुग्गलि" इत्यपि पाठः

स्माधकाशदानपरिणामेन परिणतत्वात् । तथा कालस्याप्याव-
लिकादि परिणामपरिणतत्वादनादि पारिणामिकभाववर्त्तित्व-
मिति । अथ पञ्चम [1]स्कन्धद्वार यथा—तथा [2]स्कन्धे पूर्वोक्तलक्षणे
पारिणामिक औदयिकभावश्च भवत । कोऽर्थ ? तत्र ये द्व्यणुका
दिस्कन्धास्तेषा सादिकालत्वेन तेन स्वभावेन परिणमनात् सादि
पारिणामिकत्वम्, ये च मेर्वादिस्कन्धास्तेषामनादिकालात्तेन स्व-
भावेन परिणामादनादिपारिणामिकत्वम् । तथा ये चानन्तपर-
माण्वात्मका स्कन्धास्त औदयिके पारिणामिके च भावे वर्त्तन्ते,
जीवेषु तत्तत्कर्मरूपतयोदयात् । तथाहि शरीरादिनामोदयजनित
औदारिकादि शरीरतया औदारिकादीना स्कन्धानामुदय, केव-
लाणवस्तु पारिणामिके भाव एव केवलाणूना जीवस्य ग्रहणाभा
वान्नौदयिकभाव इति ६ । अथ षष्ठ कर्मद्वार यथा—' पञ्चविहा '
इत्यादि मोहे मोहनीय कर्मणि पञ्चापि भावा भवन्ति, औप-
शमिक क्षायिक क्षायोपशमिकौदयिक पारिणामिकलक्षणा इ-
त्यर्थ । तत्रोपशमोऽनुदयावस्था भस्मच्छन्नाग्नेरिव, स चेह सर्वो-
पशमो विवक्षितो न देशोपशमस्तस्य सर्वेषामपि कर्मणा सम्भ-
वादिति । क्षयोपशम उदीर्णस्य क्षयानुदीर्णस्य चोपशम । क्षय
आत्यन्तिको च्छेद । उदयस्तु प्रतीत एव सर्वेषामपि सासारिक
जीवानामष्टानामपि कर्मणामुदयदर्शनात् । पारिणामिकस्तु जीव
प्रदेशै सह सलुलिततया मिश्रीभवनम्, यद्वा तत्तद्द्रव्यक्षेत्रकाला
ध्यवसायापेक्षया तथा तथा सङ्क्रमादिरूपतया यत्परिणमन
मिति ॥ ८ ॥

---

१ ' पुद्गल ' इत्यपि पाठ । २ पुद्गले इत्यपि पाठ

१ पुद्गलकारनन्तु इत पाठो न दृश्यते, किन्त्वयमर नवमगाथावचूणा दृश्यते । अस्माभिस्तु सपुद्गलेत्यष्टमगाथावचूर्णिवाक्ये स्थानान्तरेोपन्यस्त ।

दंसणं नाणावरणे विग्घे विणुवसम हुंति चत्तारि ।
वेयाउ नाम गोए, उवसम मीसेण रहिआओ ॥ ९ ॥

अवचूरिः—दर्शनावरणे १ ज्ञानावरणे २ विघ्नेऽन्तराये ३ उपशमं विना चत्वारो भावा भवन्ति, क्षायिक १ क्षायोपशमिक २ औदयिक ३ पारिणामिक ४ लक्षणाइत्यर्थः । तत्रापि केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणयोर्विपाकोदयविष्कम्भा भावतः क्षयोपशमासम्भव इति । वेयाउ० वेदनीया १ ऽऽयुः २ नाम ३ गोत्रेषु ४ औपशमिक १ क्षायोपशमिकौ २ विना शेषा भावा भवन्ति, क्षायिकौदयिकपारिणामिकलक्षणास्त्रयो भावा भवन्तीत्यर्थः ९ ॥ ९ ॥

यन्त्रकं यथा—

कर्म	ज्ञा.	द.	वे.	मो	आ.	ना.	गो.	अं.
भावा	४	४	३	५	३	३	३	४

अथ सप्तमं गाथामाह—

चउसु वि गइसु पण पण, खाइअ परिणाम हुंति सिद्धीए ।
अह जीवेसु अ भावे, भणामि गुणठाणरूवेसु ॥ १० ॥

अवचूरिः—'चउसु वि' चतसृष्वपि नारकतिर्यग्मनुष्यदेवरूपासु गतिषु पञ्च पञ्च भावा भवन्ति, कथम् ? औपशमिको भाव औपशमिकं सम्यक्त्वम् १ । क्षायिको भावः क्षायिकं सम्यक्त्वम् २ । क्षायोपशमिको भावः क्षायोपशमिकानीन्द्रियादीनि ३ । औदयिको भावो नरकगत्यादिः ४ । पारिणामिको भावः पारिणामिकं जीवत्वात् ५ । इति । सिद्धगतौ क्षायिकः पारिणामिकश्च भवतः । तत्र क्षायिकं ज्ञानादि, पारिणामिकं जीवत्वमिति ।

अथ गुणस्थानरूपेषु जीवेषु भावान् भणामि ॥ १० ॥ अथ प्रथमं गुणस्थानेषु मौलभेदानाह—

मीसोदयपरिणामा, एए भावा भवंति पढमतिगे ।
अग्गे अट्ठसु पण पण, उवसम विणुहुंति खीणमि ॥११॥

खइयोदयं परिणामा, तिन्नि अ भावा भवंति चरमदुगे ।
एसिं उत्तरभेआ, भणामि मिच्छाइ गुणठाणे ॥ १२ ॥

अवचूरि —प्रथमत्रिके मिथ्यादृष्टि १ सास्वादन २ मिश्र ३ लक्षणे गुणस्थानत्रये प्रत्येकमेते क्षायोपशमिक १ औदयिक २ पारिणामिक ३ लक्षणास्त्रयो भावा भवन्ति तत्र क्षायोपशमिका-नीन्द्रियाणि । औदयिकी गति । पारिणामिकं जीवत्वमिति । तथाऽग्रेऽसम्यग्विरत १ देशविरत २ प्रमत्त ३ ऽप्रमत्त ४ ऽपूर्वा ५ ऽनिवृत्तिबादर ६ सूक्ष्मसम्परायो ७ पशान्तमोह ८ लक्षणेषु गुण स्थानेषु पञ्च पञ्च भावा । कथम् ? औपशमिकं सम्यक्त्वमविर-तादिगुणस्थानाष्टकं यावत्प्राप्यते १ । क्षायिकं सम्यक्त्वमविरता-दिगुणकादशकं यावत्प्राप्यते २ । क्षायोपशमिकमिन्द्रियसम्यक्त्वा-द्यविरतादिगुणस्थानचतुष्कं यावत्प्राप्यते, अग्रेऽपूर्वानिवृत्तिबा-दरसूक्ष्मसम्परायोपशान्तेषु क्षायोपशमिकानीन्द्रियादीनि भव-न्ति, नतु क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वमिति ३ । औदयिकी गति ४ । पारिणामिकं जीवत्वम् ५ इति । तथा क्षीणे क्षीणमोहे द्वाद-शगुणस्थानके औपशमिकं विना पूर्वोक्ताश्चत्वारो भावा भवन्ति । तत्र क्षायोपशमिकानीन्द्रियादीनि, औदयिकी गति , पारिणा-मिकं जीवत्वादि क्षायिकं सम्यक्त्वं चरणं चेति ॥ ११ ॥ चरम-द्विके सयोग्ययोगिगुणस्थानद्वये त्रयो भावा भवन्ति, कथम् ? क्षायिकं केवलज्ञानादि १ औदयिकी गतिः २, पारिणामिकं जी-

चत्व ३ मित्येवंरूपास्त्रयो भावा इति ॥ १२ ॥ स्थापना चेयम्—

गुण.	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अप्र.	अपु.	अनि.	सू.	उ.	क्षी.	स.	अयो.
मूलभी	३	३	३	५	५	५	५	५	५	५	५	४	३	३

अथैतेषामुत्तरभेदान् मिथ्यात्वादिगुणस्थानकेषु भणामि—

मिच्छे तह सासाणे, खाओसमिया भवंति दसभेया ।
दाणाइपणग चउ दु य, अचक्खु अन्नाणतिगं च ॥१३॥

मिस्से मिस्सं सम्मं, तिदंसं दाणाइ पणग नाणतिगं ।
तुरिए बारस नवरं, मिस्सच्चाएण सम्मत्तं ॥ १४ ॥

अवचूरिः—' मिच्छे ' मिथ्यात्वगुणस्थाने १ सास्वादनगुणस्थाने २ क्षायोपशमिका दश भेदा भवन्ति, कथम् ? दानादिलब्धिपञ्चकं ५ चक्षुरचक्षुर्दर्शनं ७ अज्ञानत्रिकं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानलक्षणं १० चेति ॥ १३ ॥ ' मिस्से ' मिश्रे सम्यग्मिथ्यादृष्टौ मिश्ररूपं सम्यक्त्वं १ चक्षुरचक्षुरवधिलक्षणदर्शनत्रिकं ४ दानादिलब्धिपञ्चकं ९ ज्ञानत्रयं १२ चेति क्षायोपशमिका द्वादश भावभेदा भवन्ति । अत्र ज्ञानाज्ञानान्यतरांशबाहुल्यमुभयांशसमता वा स्यात् । अत्र ज्ञानबाहुल्यविवक्षया ज्ञानत्रिकमुक्तं, अस्मिश्च गुणस्थानके यदवधि दर्शनमुक्तं तत्सैद्धान्तिकमतापेक्षयेति । तथा तुर्येऽविरतगुणस्थाने क्षायोपशमिका मिश्रोक्ता द्वादश भावा भवन्ति, केवलं मिश्रत्यागेन मिश्रसम्यक्त्वं क्षायोपशमिकसम्यक्त्वं वाच्यमिति ॥ १४ ॥

सम्मुत्ता ते बारस, विरइक्खेवेण तेर पंचमए ।
छट्ठे तह सत्तमए, चउदस मणनाणखेवि कए ॥ १५ ॥

अवचूरि —' सम्मुत्ता पञ्चमे देशविरतिगुणस्थाने त्रयोदश क्षायोपशमिका भावा भवन्ति, कथम् ? ते सम्यक्त्वोक्ता द्वादश देशविरतिक्षेपेण त्रयोदशेति । तथा षष्ठे प्रमत्तगुणस्थाने ६ तथा सप्तमकेऽप्रमत्तगुणस्थाने ७ क्षायोपशमिकाश्चतुर्दश भेदा भवन्ति, कथम् ? दर्शनत्रिक ३ दानादिलब्धिपञ्चक ८ ज्ञानत्रिक ११ सम्यक्त्व १२ सर्वविरति १३ लक्षणा पूर्वोक्तास्त्रयोदश, एषु-मन पर्यायज्ञानप्रक्षेपे कृते चतुर्दश भवन्तीति ॥ १५ ॥

अट्ठम नवमे दसमे, विणु सम्मत्तेण होइ तेरसगं ।
उवसंत खीणमोहे, चरित्तरहिया य वार भवे ॥ १६ ॥

अवचूरि —' अट्ठम ' तथाऽष्टमेऽपूर्वकरणे, नवमेऽनिवृत्ति बादरे, दशमे सूक्ष्मसम्पराये सम्यक्त्वेन क्षायोपशमिकसम्यक्त्वेन विना पुर्वोक्तास्त्रयोदश भावा भवन्ति, कथम् ? दर्शनत्रिक ३ दानादिलब्धिपञ्चक ८ ज्ञानचतुष्क १२ लक्षणा क्षायोपशमिक भेदाद्वादशेति १ ॥ १६ ॥ इति गुणस्थानेषु क्षायोपशमिक भाव भेदा उक्ता । अधुनौदयिकभावभेदा गुणस्थानेषु भाव्यन्ते—

अन्नाणाऽसिद्धत्त, लेसाऽसंजमकसायगइ वेया ।
मिच्छत्त मिच्छत्ते, भेया उदयस्स इगवीसं ॥ १७ ॥
वियए मिच्छ विणा ते, वीसं भेया भवति उदयस्स ।
तइए तुरिए दसनव, विणु अन्नाणेण णायव्वा ॥ १८ ॥
देसे सतरस नारग-गइदेवगइण अभावओ हुति ।
तिरिगइ असंजमाओ, उदए छट्ठस्स न भवति ॥ १९ ॥

अवचूरि —अज्ञाना १ ऽसिद्धत्व २ लेश्या ८ ऽसयम ९ कषायचतुष्क १३ गतिचतुष्क १७ वेदत्रय २० मिथ्यात्व २१ ल-

क्षणा एकविंशतिर्भेदा मिथ्यात्वगुणस्थाने औदयिकभावस्य भवन्ति ॥ १७ ॥ 'बिइए' द्वितीयगुणस्थानके औदयिकभावस्य ते पुर्वोक्ता एकविंशतिर्मिथ्यात्वं विना विंशतिर्भेदा भवन्ति । तथा तृतीये मिश्रगुणस्थाने, तुर्येऽविरतगुणस्थानेऽज्ञानेन विना एकोनविंशतिः । तृतीये चतुर्थे च गुणस्थानेऽसिद्धत्व १ लेश्या ७ ऽसंयम ८ कषाय १२ गति १६ वेद १९ लक्षणा एकोनविंशतिरौदयिकभावभेदा भवन्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥ 'देसे' देशविरतौ पञ्चमगुणस्थाने पुर्वोक्तैकोनविंशति मध्यान्नारकगतिदेवगत्योरभावात् असिद्धत्व १ लेश्या ७ ऽसंयम ८ कषाय १२ मनुष्यगति १३ तिर्यग्गति १४ वेदत्रय १७ लक्षणाः सप्तदशौदयिकभावभेदा भवन्तीत्यर्थः, तथा प्रमत्तस्य तिर्यग्गत्यसंयमौ उदये न भवतः, प्रमत्तेऽसिद्धत्व १ लेश्या ७ कषायचतुष्क ११ मनुष्यगति १२ वेदत्रय १६ रूपाः पञ्चदशौदयिकभावभेदा भवन्तीत्यर्थः ॥ १९ ॥

आइतिलेसाभावे, बारस भेया भवंति सत्तमए ।
तेऊपम्हाऽभावे, अट्ठमनवमे य दंस भेया ॥ २० ॥
आइसकसायतियगं, वेयं तिग विणा भवंति चत्तारि ।
दंसमे उवरिम तियगे, लोभविणा हुंति तिन्नेव ॥ २१ ॥
चरमगुणेऽसिद्धत्तं मणुआण गई तहा य उदयंमि ।

अवचूरिः—आदित्रिलेश्याभावे द्वादश भेदा भवन्ति, सप्तमके ऽप्रमत्तगुणस्थाने, असिद्धत्व १ तेजः पद्मशुक्ललेश्यात्रयः ४ कषाय ८ मनुष्यगति ९ वेदत्रय १२ रूपा द्वादशौदयिक भावभेदा भवन्तीत्यर्थः । तथा तेजोलेश्यापद्मलेश्ययोरभावेऽष्टमेऽपूर्वगुणस्थाने, नवमेऽनिवृत्तिबादरगुणस्थाने दश भेदा भवन्ति । अष्टमे नवमे चासिद्धत्व १ शुक्ललेश्या २ कषाय ६ मनुष्यगति ७

पदत्रय १० रूपा दशौदयिकभावभेदा भवन्तीत्यर्थ ॥ २० ॥ दशमे आदिमकषायत्रिक ३ वेदत्रिकं ६ च विना चत्वारो भेदा भवन्ति। सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकेऽसिद्धत्व १ शुक्ललेश्या २ सज्वलनलोभ ३ मनुष्यगति ४ रूपाश्चत्वार औदयिकभावभेदा भवन्तीत्यर्थ । तथोपरिमत्रिके लोभ विना त्रयो भेदा भवन्ति । उपशान्त ११ क्षीणमोह १२ सयोगिकेवलिषु १३ । असिद्धत्व १ शुक्ललेश्या २ मनुष्यगति ३ रूपास्त्रय औदयिकभावभेदा भवन्तीत्यर्थ ॥ २१ ॥ चरमगुणेऽयोगिकेवलिगुणस्थानेऽसिद्धत्वं १ मनुष्यगति २ औदयिकभावभेदौ भवत । इति गुणस्थानेषु औदयिकभावभेदा उक्ता २ । अथौपशमिकभावभेदौ गुणस्थानेषु भाव्येते—

तुरिआओ उवसतं, उवसमसम्म भवे पवरं ॥ २२ ॥
नवमे दसमे सते, उवसमचरणं भवे नराण च ।
खाइगभेए भणिमो, इत्तो गुणट्ठाणजीवेसु ॥ २३ ॥

अवचूरि —'तुरिआओ' तुर्यादविरतगुणस्थानादारभ्योपशान्त यावदौपशमिकसम्यक्त्वरूप औपशमिकभावभेद प्राप्यते ॥ २२ ॥ 'नवमे' नवमेऽनिवृत्तिबादरे, 'दशमे' सूक्ष्मसम्पराये 'सते' इति एकादशे च गुणस्थाने नराणामौपशमिकचारित्ररूपभेद प्राप्यते । अतो नवमदशमैकादशगुणस्थानत्रयेऽपि शास्त्रान्तरे औपशमिकचारित्रस्य प्रतिपादनादित्युक्तावौपशमिकभावभेदौ गुणस्थानेष्विति ३ । इत क्षायिकभावभेदान् गुणस्थानजीवेषु भणाम इति ॥ २३ ॥

खाइगसम्मत्त पुण, तुरियाइगुणदुगे सुए भणियं ।
खीणे खाइगसम्मं, खाइगचरणं च जिणकहिअं ॥ २४ ॥

दाणाइलद्धिपणगं, केवलजुअलं संमत्त तह चरणं ।
खाइगभेआ एए, संजोगिचरमे य गुणठाणे ॥ २५ ॥

अवचूरिः—क्षायिकं सम्यक्त्वं तुर्यादिगुणस्थानाष्टके श्रुते भणितम् । अविरत १ देशविरत २ प्रमत्ता ३ ऽप्रमत्ता ४ अपूर्वा ५ ऽनिवृत्तिबादर ६ सूक्ष्मसम्परायो ७ पशान्त ८ रूपे गुणाष्टके क्षायिकभावस्य क्षायिकसम्यक्त्वरूपभेदो भवति नान्यः । तथा क्षीणे क्षीणमोहे पुनः क्षायिकं सम्यक्त्वं, क्षायिकं चेति क्षायिकभेदद्वयं जिनैः कथितमिति ॥ २४ ॥ सयोगिगुणस्थाने चरमेऽयोगिगुणस्थाने च दानादिलब्धिपञ्चकं केवलयुगलं केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपं ७ सम्यक्त्वं ८ चारित्रं ९ चैते नव क्षायिकभाव भेदा भवन्ति नान्ये ॥ २६ ॥ इति गुणस्थानेषु क्षायिकभावभेदा उक्ताः ४ । अथ गुणस्थानेषु पारिणामिकभावभेदा भाव्यन्ते —

जीवत्तमभव्वत्तं, भव्वत्तं आइमे अ गुणठाणे ।
सासण जा खीणं तं, अभव्ववज्जा य दो भेया ॥ २६ ।

चरमे दुअगुणठाणे, भव्वत्तं वज्जिऊण जीवत्तं ।
एए पंचवि भावा, परूविआ सव्वगुणठाणे ॥ २७ ॥

अवचूरिः—आदिमे मिथ्यात्वगुणस्थाने पारिणामिकाख्त्रयो भेदाः, कथं ? जीवत्व १ सभव्यत्वं २ भव्यत्वं ३ इति । तथा सास्वादनादारभ्य क्षीणमोहं यावदभव्यवर्जौ द्वौ भेदौ भवतः ॥२६॥ 'चरमे' चरमे गुणस्थानद्विके, भव्यत्वं वर्जयित्वा मुक्त्वा जीवत्वं भवति । सयोगिकेवलिनश्च कथं न भव्यत्वम् ? उच्यते, प्रत्यासन्नसिद्धावस्थायां भव्यत्वस्याभावादधुनापि तदपगतप्रायत्वादिना केनचित्कारणेन शास्त्रान्तरेषु नोक्तमित्यतोऽत्रापि

नोक्तमिति। उक्ता गुणस्थानेषु पारिणामिकभावभेदा इति ५। एते पञ्चापि भावा औदयिक १ क्षायिक २ क्षायोपशमिक ३ औपशमिक ४ पारिणामिकलक्षणा ५ मौलोत्तरभेदभिन्ना सर्वगुण स्थानेषु प्ररूपिता ॥ २७ ॥

अथ सान्निपातिकः षष्ठ उच्यते—

चउतीसा बत्तीसा, तित्तीसा तह य होइ पणतीसा।
चउतीसा तित्तीसा तीसा सगवीस अडवीसा ॥ २८ ॥

बावीस वीसं एगूणवीस तेरसय बारसक्कमेण।
एए अ सन्निवाइअ भेया सव्वे य गुणठाणे ॥ ॥ २९ ॥

अवचूरि —यस्य भावस्य भेदा यस्मिन् गुणस्थानके यावन्त उक्तास्तेषां सम्भवि भावभेदानामेकत्र मीलने सति तावद् भेदनिष्पन्न षष्ठ सान्निपातिकभावभेदस्तस्मिन् गुणस्थानके भवति। यथा मिथ्यादृष्टावौदयिकभावभेदा एकविंशति २१, क्षायोपशमिकभावभेदा दश १०, पारिणामिकभावभेदास्त्रय ३, सर्वे भेदाश्चतुस्त्रिंशत् ३४। एव सास्वादने द्वात्रिंशत् ३२। मिश्रे त्रयस्त्रित् ३३ अविरते पञ्चत्रिंशत् ३५ देशविरतौ चतुस्त्रिंशत् ३४। प्रमत्ते त्रयस्त्रिंशत् ३३। अप्रमत्ते त्रिंशत ३०। अपूर्वे सप्तविंशति २७। अनिवृत्तावष्टविंशति २८॥ २८॥ सूक्ष्मसम्पराये द्वाविंशति २२। उपशान्तमोहे विंशति २०। क्षीणमोहे एकोनविंशति १९। सयोगिनि त्रयोदश १३। अयोगिनि द्वादश १२। एव क्रमेणैते सान्निपातिकभावभेदा सर्वगुणस्थानके उक्ता इति ॥ २९ ॥ एषा यन्त्र यथा—

१	२	३	४	५	६	७	८	६	१०	११	१२	१३	१४	गुणस्थान संख्याः
मि.	सा.	मि.	श्र.	दे.	प्र.	अप्र.	अपू.	अनि.	सू.	उ.	क्षी.	स.	अयो.	गुणस्थानक नामानि
१०	१०	१२	१२	१३	१४	१४	१३	१३	१३	१२	१२	०	०	क्षायोपशमिक भेदाः
२१	२०	१६	१६	१७	१५	१२	१०	१०	४	३	३	३	२	औदयिकभेदाः
०	०	०	१	१	१	१	१	२	२	२	०	०	०	औपशमिक भेदाः
०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	२	६	६	क्षायिकभेदाः
३	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	१	१	पारिणामिकभेदाः
३४	३२	३३	३५	३४	३३	३०	२७	२८	२२	२०	१९	१३	१२	सान्निपातिकभेदाः

सिरिसिरि[1] आणंदविमलसूरि, सुसि[2]स्सेण विजयविमलेणं ।
लहियं पगरणमेयं, रम्माओ पुव्वग्गंथाओ ॥ ३० ॥

शुभं भवतु सङ्घाय ।

समाप्तमिदं श्रीविजयविमलरचितं भावप्रकरणम्

अवचूरिः—श्रीश्री[3] आनन्द[4]विमलसूरिसुशिष्येण विजयविमलेनेदं प्रकरणं रम्यात्पूर्वग्रन्थात्कर्मग्रन्थसूत्रतट्टीकादेर्लिखितम्॥३०॥

गुणनयनरसेन्दुमिते १६२३ वर्षे पौषे च कृष्णपञ्चम्याम् ।
अवचूर्णिः प्रकटार्था, विहितेयं विजयविमलेन ॥ १ ॥

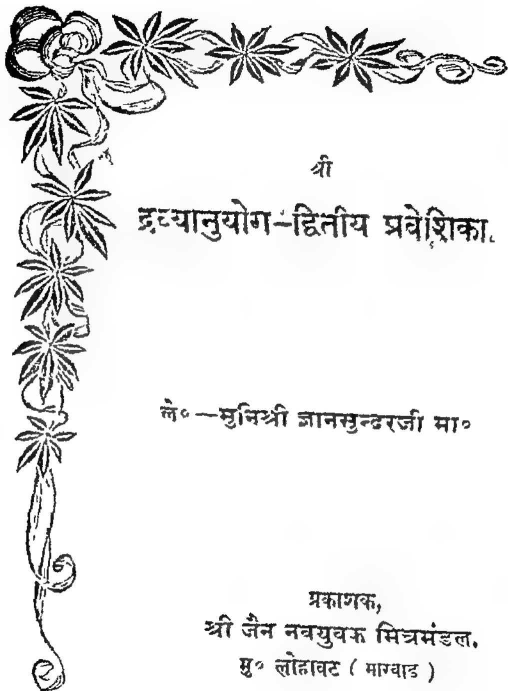
समाप्तमिदं श्रीविमलविजयगणिप्रणीत सावचूरि भावप्रकरणम् ॥

१ 'गुरु' इत्यपि । २ 'विणेयेण इत्यपि' ३ 'श्रीगुरु' इत्यपि ४ 'विनयन' इत्यपि.

मिलनेका पत्ताः—

श्रीसुखसागर ज्ञानप्रचारक सभा.

मु० लोहावट-(मारवाड)



श्री

द्रव्यानुयोग-द्वितीय प्रवेशिका.

ले०—मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी मा०

प्रकाशक,
श्री जैन नवयुवक मित्रमंडल,
मु० लोहावट (मारवाड)

द्रव्य सहायक—

श्रीसुखसागर ज्ञानप्रचारक सभा.

श्री भगवतीजी सूत्रकि पूजाकि आमदनीसे.

इन पुस्तकोंकी आमदनिसे और भी ज्ञानप्रचार वडाया जावेगा ।

अथ श्री

द्रव्यानुयोग द्वितीय प्रवेशिका

जिस्में

आठ कर्मोंकि १५८ उत्तर प्रकृति

तथा

पैंतालीस आगमोंकि सूची.



लेखक,

श्रीमदुपकेश (कमला) गच्छीय

मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज.



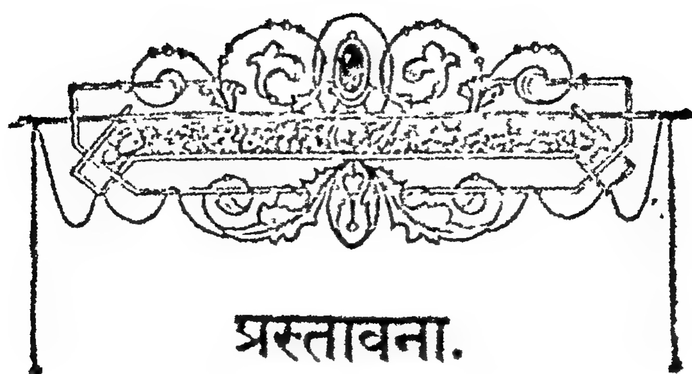
प्रकाशक.

श्री जैन नवयुवक मित्रमंडल.

मु० लोहावट (मारवाड)

प्रथमावृत्ति ५०००   विक्रम संवत १९८०

किंमत [illegible]



प्रस्तावना.



प्यारे सज्जनों:—

आज ग्रामोग्राम नगरोंनगरमें जहां देखा जावे वहां सभाओ मंडलो द्वारा वीर उत्साही नवयुवक जाति न्याति सामाजीक और धर्म सेवा कर अपने जन्मकों कृतार्थ वना रहे है. उनकों देख हमें भी भावना होती है कि हमारे मरुस्थल जेसे अपठित क्षेत्रोंके शोक मोज में जीवन गुजारनेवाले नवयुवकों को भी कभी वह तालीम मीलेगी ?" याद्दशी भावनां कुयात्सिद्धिर्भवति ताद्दशी " हमारे भाग्योदयसे पूज्य मुनिश्री हरिसागरजी तथा श्रीमान् ज्ञानसुन्दरजी महाराजका शुभागमन होते ही हमारी भावना सफल हुइ । कहा है कि "जलमें वसे कुमुदिनी, चन्द्र वसे आकाश; जो जाउके मनवसे, तो ताउके पास" हम लोगोंकि वहुत कालसे अभिलाषाथी कि श्रीमान् ज्ञानसुन्दरजी

महाराज पधारे तो आपश्रीके मुखारविंदसे श्री भगवतीजीसूत्र श्रवण कर हमारा जन्म पवित्र करे। आग्रहसे विनती होनेसे आपश्रीने हमारी अर्ज मंजुर करी सं. १९७९ का चैत वद ६ को यहा के श्री संघने श्रीमद भगवतीसूत्रका बडा महोत्सव किया जुलसाके साथ वरघोडा चढाया ज्ञानपूजामें १८ अठारा सुवर्ण मुद्रिका मीलाके रु. १०००) कि आमदनि हुइ वह द्रव्य ज्ञानपुस्तकों छपानेमें लगानेका ठराव हुवा इस सुअवसर पर श्री सुखसागर ज्ञानप्रचारक सभाकि स्थापना हुइ जिस्का खास उद्देश जैन शासनमें सुखरुपी समुद्र भरा है जिसे एकेक बिन्दु द्वारा हमारे वाचकोंको उन सुखोंका अस्वादन करवा देना उसी सुखसागरका यह प्रथम बिंदु है जिस्में जड चैतन्यका संबन्ध तथा आठ कर्मोकी १५८ उत्तर प्रकृतियोंका सुगमतासे विवरण बतलाया है और जैनोंमें वर्तमान प्राय: ४५ आगम माने जाते है जिस्मे क्या क्या विषय है उनोंकाभी सुगमतासे बोध होनेके लिये इस लघुपुस्तक में अच्छा प्रयत्न किया गया है. वास्ते हम हमारे पाठकोंसे सविनय निवेदन करते है कि आप सज्जन इस लघु किताब को आद्योपान्त पढके हमारे उत्साहकों बढावेगा तो हम इस सुखसमुद्रके बिंदु आपकि सेवामें भेट भेजते रहेगा।

आपश्रीका यह उपदेश बडाही चमत्कारी है इस्वास्ते नहीं बल्कि आप फरमाते है जीस वातोंकि हमे खास जरूरत है उसी रस्ते

कों आपश्री ठीक तोरसे वतला रहे है--प्राचीन इतिहास द्वारा हमारे जैनधर्मका हमारे पूर्वजोंका गौरव, हमारी संपति, हमारा प्रेम--ऐक्यता उदारता आदिका दिग्दर्शन कराते हुवे हमारेपर वडा भारी उपकार कर रहे है इनोंका फल यह हुवा कि यहांपर " श्री जैन नव युवक मित्र मंडल " कि स्थापना हुइ है जिनोंका खास उद्देश्य समाज सेवा और ज्ञानप्रचार वडानेका है साथमें हानिकारक पडीहुइ रुढीयोंकों तथा फजुल खरचावोंकों कम करना ओर अपने पूर्वजोंकी माफीक मादि चालों कि प्रवृति प्रयत्न उपदेश तथा भापण करते हुवे तर्फ आकर्पित हो रहा है स्वल्पकाल में भी इस मित्र मंडलने वृद्ध सज्जनोंकी मदद से अच्छी सफलता प्राप्त करी है भविप्यके लिये उत्साह भी वडता जा रहा हैं हम शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि इस मित्रमंडलका दिन प्रतिदिन उत्साह वडता रहें ओर एसे महात्माओंका विहार मरुस्थल जेसे देशोंमें हमेशों होते रहें अन्य मुनिमहाराजोंसे भी हमारी नम्रता पुर्वक विनती है कि आप, श्रीमान् मरुस्थल जेसे अपठित क्षेत्रमे विहारकर हमलोगो पर उपकार करे समज जाने से मारवाडी लोग काम कर बतलानेवाले है । शांतिः

भवदीय.

१९८० का मीती
श्रावण शुद ९

छोगमल कोचर.
प्रेसिडन्ट श्री जैन नवयुवक मित्र मंडळ.
मु. लोहावट—मारवाड.

अथश्री

आठ कर्मों कि १५८ प्रकृति ।



जीवका स्वभाव चैतन्य और कर्मोका स्वभाव जड एव जीव और कर्मोका भिन्न भिन्न स्वभाव होने पर भी जैसे धूलमें धातु तीलोंमें तैल दूधमें घृत है, इसी माफीक अनादि कालसे जीव और कर्मो के संबन्ध है जैसे यंत्रादि के निमित्त कारणसे धूलसे धातु तीलोंसे तैल दूधसे घृत अलग हो जाते है इसी माफीक जीवों को ज्ञान दर्शन तप जप पूजा प्रभावनादि शुभ निमत्त मीलनेसे कर्मो और जीव अलग अलग हो जीव सिद्ध पदको प्राप्त कर लेते है.

जबतक जीवों के साथ कर्म लगे हुवे है तबतक जीव अपनि दशाको भुल मिथ्यात्वादि परगुण में परिभ्रमन करता है जैसे सुवर्ण आप निर्मल अकलक कोमल गुणवाला है किन्तु अग्निका सयोग पाके अपना असली स्वरुप छोड उष्णता को धारण करता है फीर जल वायुका निमत्त मीलने पर अग्निका त्यागकर अपने असली गुणको धारण कर लेता है इसी माफीक जीव भी निर्मल अकलंक अमूर्त्ति है परन्तु

मिथ्यात्वादि अज्ञान के निमत्त कारणसे अनेक प्रकार के रूप धारण कर संसारमें परिभ्रमन करता है जब सद्ज्ञान दर्शनादि का निमित्त प्राप्त कर मिथ्यात्वादिका संग त्याग अपना असली स्वरूप धारण कर सिद्ध अवस्थाको प्राप्त कर लेता है.

जीव अपना स्वरूप कीस कारणसे भूल जाता है ? जैसे कोइ अकलमंद समजदार मनुष्य मदिरापान करनेसे अपना भान भुल जाता है फीर उन मदिरा का नशा उतरने पर पश्चाताप कर अच्छे कार्यमें प्रवृति करता है इसी माफीक अनंत ज्ञानदर्शनका नायक चैतन्यके मोहादि कर्मदलक विपाकोदय होता है तब चैतन्यको बेभान—विकल—बना देता है फीर उन कर्मों को भोगवके निर्जरा करने पर अगर नया कर्म न बन्धे तो चैतन्य कर्म मुक्त हो अपने स्वरूपमें रमणता करता हुवा सिद्ध पदको प्राप्त कर लेते है.

कर्म क्या वस्तु है ? कर्म एक कीस्मके पुद्गल है जिस पुद्गलोंमें पांच वर्ण दोगन्ध पांचरस च्यार स्पर्श है जीवोंके उन पुद्गलों से अनादि कालका संबन्ध लगा हुवा है उन कर्मोंकि प्रेरणासे जीवोके शुभाशुभ अध्यवसाय उत्पन्न होते है उन अध्यवसायोंकी आकर्षणासे जीव शुभाशुभ कर्म पुद्गलोंको ग्रहन करते है। वह पुद्गल आत्मा के प्रदशोंपर चीटक जाते है अर्थात् आतम प्रदेशों के साथ उन कर्म पुद्गलोंका खीरनिरकी माफीक बन्ध होते है जिनोंसे वह कर्म पुद्गल आत्माके गुणोंको झांखा बना देते है जैसे सूर्यको

चादल झाखा चनाता है। जैमे जैसे अध्यवसायोंकी मंदता तीव्रता होती हैं वैसे वैसे कर्मो के अन्दर रम तथा स्थिति पड जाति हैं वह कर्म बन्धने के बाद वह कर्म कीतने कालसे विपाक उदय होते है उसकों अबादा काल कहते है जैसे हुन्डीके अन्दर मुदत डाली जाति हैं॥ कर्म दो प्रकारसे भोगवीये जाते हैं (१) प्रदेशोदय (२) विपाकोदय जिस्मे तप जप ज्ञान ध्यान पूजा प्रभावनादि करनेसे दीर्घ कालके भोगवने योग्य कर्मोको आकर्षण कर स्वल्प कालमें भोगव लेते है जिसकी खबर छदमस्थोंको नही पडती है उसे प्रदेशोदय कहते है तथा कर्म विपाकोदय होनेसे जीवोंको अनेक प्रकारकी विटम्बना से भोगवना पडे उसे विपाकोदय कहते हैं।

अशुभ कर्मोदय भोगवते समय आर्तध्यानादि अशुभ क्रिया करने से उन अशुभ कर्मोंमें और भी अशुभ कर्म स्थिति तथा अनुभाग रसकि वृद्धि होती है तथा अशुभ कर्म भोगवतें समय शुभ क्रिया ध्यान करनेमे वह अशुभ पुद्गल भी शुभपणे प्रणम जाते है तथा स्थितिघात रसघात कर बहुत कर्म प्रदेशोंमे भोगवके निर्जरा कर देते है॥ शुभ कर्मोदय भोगवते समय अशुभ क्रिया करनेमें वह शुभ कर्म पुद्गल अशुभपणे प्रणमते हैं और शुभ क्रिया करनेमे उन शुभ कर्मोमें और भी शुभकि वृद्धि होती है वह शुभ कर्म सुखे सुखे भोगव के अन्तमें मोक्षपदको प्राप्त कर लेते है।

साहुकार अपने धनका रक्षण कब कर सकेंगें कि प्रथम

चोर आनेका कारण हेतु रहस्तेको ठीक तोरपर समजलेगें फीर उन चोर आनेके रहस्तेकों बन्ध करवादे या पेहरादार रखदे तो धनका रक्षण कर सके इसी माफीक शास्त्रकारोंने फरमाया है कि प्रथम चोंर याने कर्मोका स्वरूपकों ठीक तोरपर समजो फीर कर्म आनेका हेतु कारणको समजो फीर नया कर्म आनेके रहस्तेकों रोकों और पुरांणे कर्मोको नाश करनेका उपाय करों तांके संसारका अन्त कर यह जीव अपने निज स्थान (मोक्ष) को प्राप्त कर सादि अनंत भाग सुखी हो ।

कर्मोंकि विषय के अनेक ग्रन्थ है परन्तु साधारण मनुष्योंके लिये एक छोटीसी कीताब हो तो वह सुविधा के साथ लाभ उठा सके इस हेतुसे इस छोटीसी कीताब द्वारा मूल आठ कर्मोंकि उत्तरकर्म प्रकृति १५८ का संक्षिप्त विवरणकर आपकि सेवामें रखी जाति है आशा है कि आप इस कर्म प्रकृतियोंकों कंठस्थ कर आगे के लिये अपना उत्साह बढाते रहेगें इत्यलम् ।

॥ मूल आठ कर्मोंकि उत्तर प्रकृति १५८ ॥

(१) ज्ञानावर्णियकर्म—चैतन्यके ज्ञान गुणकों रोक रखा है ।
(२) दर्शनावर्णियकर्म—चैतन्यके दर्शन गुणकों रोक रखा है ।
(३) वेदनियकर्म—चैतन्यके अव्याबाद गुणकों रोक रखा है ।
(४) मोहनियकर्म—चैतन्यके क्षायक गुणकों रोक रखा है ।
(५) आयुष्यकर्म—चैतन्यके अटल अवगाहाना गुणकों रोक रखा है ।
(६) नामकर्म—चैतन्यके अमूर्त्ति गुणकों रोक रखा है ।

(७) गौत्रकर्म—चैतन्यके अगुरु लघु गुणकों रोक रखा है।
(८) अन्तरायकर्म—चैतन्यके वीर्य गुणकों रोक रखा है।

इन आठों कर्मोंकि उत्तर प्रकृति १५८ है उनोंका विवरण—

(१) ज्ञानावर्णियकर्म जेसे घाणीका बहल-याने घाणीके बहलके नेत्रोंपर पाट्टा बान्ध देनेसे कीसी वस्तुका ज्ञान नही होता है. इसी माफीक जीवोंके ज्ञानावर्णिय कर्मपडल आजानेसे वस्तुतत्त्वका ज्ञान नहीं होता है। जीस ज्ञानावरणीय कर्मकि उत्तर प्रकृति पांच है यथा—(१) मतिज्ञानावर्णिय, ३४० प्रकारके मतिज्ञान है (देखो शीघ्रबोध भाग ६ ठा) उनके आवरण करना अर्थात् मतिसे कोसी प्रकारका ज्ञान नही होने देना अच्छी बुद्धि उत्पन्न नही होना तत्त्व वस्तुपर विचार नही करने देना प्रज्ञा नही फेलना—बदलेमें खराब मति—बुद्धि—प्रज्ञा—विचार पैदा होना यह सब मतिज्ञानावर्णियकर्मका ही प्रभाव है (२) श्रुतिज्ञानावर्णिय श्रुतिज्ञानको रोके, पठन पाठन श्रवण करतेको रोके, सद्ज्ञान होने नही देवे योग्य मीलनेपर भी सूत्र सिद्धान्त वाचना सुननेमें अन्तराय होना—बदलेमें मिथ्याज्ञान पर श्रद्धा पठन पाठन श्रवण करनेकि रूची होना यह सब श्रुतिज्ञानावर्णियकर्मका प्रभाव है (३) अवधिज्ञानावर्णियकर्म अनेक प्रकारके अवधिज्ञानकों रोके (४) मनःपर्यवज्ञानावर्णियकर्म आते हुवे मनःपर्यवज्ञानको रोके (५) केवलज्ञानावर्णियकर्म संपूर्ण जो केवलज्ञान है उनकों आते हुवेकों रोके इति ॥

(२) दर्शनावर्णीयकर्म—राजाके पोलीया जैसे कीसी मनुष्यकों राजासे मीलना है परन्तु वह पोलीया मीलने नही देते है इसी माफिक जीवोंको धर्म राजा से मीलना है परन्तु दर्शनावर्णीयकर्म मीलने नही देते है जीसकि उत्तर प्रकृति नौ है. (१) चक्षु दर्शनावर्णीयकर्म प्रकृति उदय से जीवोंको नेत्र (आँखों) हिन बना दे अर्थात् एकेन्द्रिय बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय जातिमें उत्पन्न होते है कि जहां नेत्रोंका बिलकुल अभाव है और चौरिन्द्रिय पांचेन्द्रिय जातिमें नेत्र होने पर भी रातीदा होना काना होना तथा बिलकुल नही दीखना इसे चक्षु दर्शनावर्णीयकर्म प्रकृति कहते है (२) अचक्षु दर्शनावर्णीयकर्म प्रकृति उदयसे त्वचा जीभ नाक कान और मनसे जो वस्तुका ज्ञान होता है उनोंको रोके जिस्का नाम अचक्षु दर्शनावर्णीय कहते है (३) अवधि दर्शनावर्णीयकर्म प्रकृति उदय अवधि दर्शन नही होने देवे अर्थात् अवधि दर्शनको रोके (४) केवल दर्शनावर्णीय कर्मोदय, केवल दर्शन होने नही देवे अर्थात् केवल दर्शनपर आवरण कर रोक रखे ॥ तथा पांच निंद्रा-निंद्रा दर्शनावर्णीयकर्म प्रकृति उदय से निंद्रा आति है परन्तु सुखे सोना सुखे जाग्रत होना उसे निंद्रा कहते है । और सुखे सोना दुःखपूर्वक जाग्रत होना उसे निंद्रानिंद्रा कहते है । खडे खडेकों तथा बैठे बैठेकों निंद्रा आवे उसे प्रचला नामकि निंद्रा कहते है । चलते फीरतेकों निंद्रा आवे उसे प्रचला प्रचला नामकि निंद्रा कहते है । दिनकों या रात्रीमें चिंतवन

(विचागहुवा) किया कार्य निंद्राके अन्दर कर लेते हो उस स्त्यानर्द्धि निद्रा कहते है. एवं च्यार दर्शन और पांच निंद्रा मीलाने से नौ प्रकृति दर्शनावर्णियकर्मकि है।

(३) वेदनियकर्म—मधुलीप्त छुरी जैसे मधुका स्वाद मधुर है परन्तु छुरीकी धार तीक्षण भी होती है इसी माफीक जीवोंको शातावेदनि सुख देती है मधुवत् और असातावेदनि दुःख देती है छुरीवत् जीसाकि उत्तर प्रकृति दोय है सातावेदनिय, असातावेदनिय, जीवोंको शरीर-कुटुम्ब धन धान्य पुत्र कलित्रादि अनुकुल मामग्री तथा देवादि पौद्गलीक सुख प्राप्ति होना उसे सातावेदनियकर्म प्रकृतिका उदय कहते है और शरीरमें रोग निर्धनता पुत्र कलित्रादि प्रतिकुल तथा नरकादि के दुःखोका अनुभव करना उसे असातावेदनियकर्म प्रकृतिकहते है।

(४) मोहनियकर्म मदिरापान कीया हुवा पुरुप बेभान हो जाते है फीर उनको हिताहितका ख्याल नही रहते है इसी माफीक मोहनियकर्मोदयमे जीव अपना स्वरूप भूल जानेसे उसे हिताहितका ख्याल नही रहता है जिस्के दो भेद है दर्शनमोहनिय सम्यक्त्व गुणको रोके और चारित्रमोहनिय चारित्र गुणको रोके जीसाकि उत्तर प्रकृति अठावीस है जिस्का मूल भेद दोय है (१) दर्शनमोहनिय (२) चारित्र मोहनिय. जिस्मे दर्शनमोहनिय कर्माकि तीन प्रकृति है (१) मिथ्यात्वमोहनिय (२) सम्यक्त्व मोहनिय (३) मिश्रमोहनिय–जेमे एक कोद्रव नामका अनाज होते है जिस्को खानेमे नशा

आ जाता है उन नशाके मारे अपना स्वरूप भूल जाता है ।

(क) जिस कोद्रव नामके धांनकों छाली सहित खानेसे विलकुल ही बैमान हो जाते है इसी माफीक मिथ्यात्व मोहनिय कर्मोदय जीव अपने स्वरूपको भूलके परगुणमें रमणता करते है अर्थात् तत्त्व पदार्थाकि विप्रीत श्रद्धनाकों मिथ्यात्व मोहनिय कहते है जिस्के आत्म प्रदेशोंपर मिथ्यात्वदलक होनेसे धर्मपर श्रद्धा प्रतित न करे अधर्मकि प्ररूपना करे इत्यादि ।

(ख) उस कोद्रव धानका अर्ध विशुद्ध अर्थात् कुछ छाली उतारके ठीक किया हो उनके खानेसे कभी सावचेती आति है इसी माफीक मिश्रमोहनीवाले जीवोंकों कुच्छ श्रद्धा कुच्छ अश्रद्धा मिश्रभाव रहते है उनोंको मिश्रमोहनि कहते है लेकीन वह है मिथ्यात्वमें परन्तु पहलों गुणस्थान छुट जानेसे भव्य है ।

(च) उस कोद्रव धानकों छाछादि सामग्रीसे धोके विशुद्ध बनाइ परन्तु उन कोद्रव धांनका मूल जातिस्वभाव नही जानेसे गलछाक बनी रहती है इसी माफीक चायक सम्यक्त्व आने नही देवे और सम्यक्त्वका विराधि होने नही देवे उसे सम्यक्त्व मोहनिय कहते है । दर्शनमोह. सम्यक्त्व घाति है ।

दुसरा जो चारित्र मोहानिय कर्म है उसका दो भेद है (१) कषाय चारित्र मोहानिय (२) नोकषाय चारित्र मोहनिय. जिसमें कषाय चारित्र मोहानिय कर्मके १६ भेद है। जिस्मे एकेकके च्यार च्यार भेद भी हो सक्के है जेसे अनंतानुबन्धी क्रोध अनंतानुबन्धी जेसा, अप्रत्याख्यानि जेसा, प्रत्याख्यानि जेसा और संज्वलन जेसा एवं १६ भेदोंका ६४ भेद भी होते है यहांपर १६ भेद ही लिखते है ।

अनतानुबन्धी क्रोध—पत्थरकि रेखा सादृश, मान वज्रके स्थभ सादृश, माया वांसाकी झड सादृश, लोभ करमजी रेस्मके रंग सादृश घात करे तो सम्यक्त्वगुणाकि स्थिति जावत् जीवकि, गति करें तों नरककि ॥ अप्रत्याख्यानि क्रोध तलावकि तड, मान दान्तकास्थंभ, माया मैंढाका शृंग, लोभ नगरका कीच, घात करे तों श्रावकके व्रतोकि स्थिति एक वर्षकि, गति तीर्यंच कि ॥ प्रत्याख्यानि क्रोध गाडाकी लीक, मानकाष्टका स्थंभ, माया चालता बैलकामूत्र. लोभ नेत्रोंके अञ्जन.घात करे तों सर्व व्रताकि, स्थिति करे तो च्यार मासकि, गति करें तों मनुष्यकी ॥ संज्वलनका क्रोध पाणीकी लीक, मानतृणका स्थंभ, माया-वासकी छाल लोभ हलदिका रग, घात करे तों वीतरागपणाकी, स्थिति क्रोधकी दो मास, मानकी एक मास मायाकी. पन्दरा दिन, लोभकी अन्तर मुहुर्त. गति करे तो देवतावोंमें जावें. इन शोलह प्रकारकी कपायको कपाय मोहनिय कहते है

नौ नोकपायप्रकृति—हास्य—कतूहल मश्करी करना । भय—डरना विस्मय होना । शोक—फीकर चिंता आर्तध्यान करना । जुगप्सा—ग्लानी लाना नफरत करना । रति—आरंभादिकार्योमें खुशी लाना । अरति—सयमादि कार्यांमे अरति करना । स्त्रिवेद—जिस प्रकृतिके उदय पुरुषोंकि अभिलापा करना । पुरुषवेद जिस प्रकृतिके उदय स्त्रियोंकि अभिलापा करना । नपुंसक वेद जिस प्रकृतिके उदय स्त्रि—पुरुष दोनोंकि अभिलाप करना ॥ एवं २८ प्रकृति.

(५) आयुष्य कर्मकि च्यार प्रकृति है यथा—नरकायुष्य, तीर्यंचायुष्य, मनुष्यायुष्य, देवायुष्य । आयुष्यकर्म जेसे कारागृहकी मुदत हो इतने दिन रहना पडता है इसी माफीक जीस गतिका आयुष्य हो उसे भोगवना पडता है ।

(६) नामकर्म चित्रकार शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके चित्रोंका अवलोकन करता है इसी माफीक नामकर्मोदय जीवोंको शुभाशुभ कार्यमें प्रेरणा करनेवाला नामकर्म है जीसकी एकसोतीन (१०३) प्रकृतियों है ।

(क) गतिनामकर्मकि च्यार प्रकृतियों है नरकगति, तीर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति । एक गतिसे दुसरी गतिमें गमनागमन करना उसे गतिनामकर्म कहते हैं ।

(ख) जातिनाम कर्म कि पांच प्रकृति है एकेन्द्रिय जाति, बेइन्द्रिय० तेइन्द्रिय० चोरिन्द्रिय० पांचेन्द्रिय जाति नाम ।

(ग) शरीर नामकर्मकि पांच प्रकृति है औदारिक शरीर वैक्रय० आहारीक० तेजस० कारमण शरीर० । प्रतिदिन नाश—विनाश होनेवालोंको शरीर कहते है ।

(घ) अंगोपांग नामकर्मकि तीन प्रकृति है. औदारिक शरीर अंग उपांग, वैक्रिय शरीर अंगोपांग, आहारीक शरीर अंगोपांग, शेष तेजस कारमण शरीरके अंगोपांग नही होते है

(ङ) बन्धन नामकर्मकी पंदरा प्रकृति है—शरीरपणे पौद्गल ग्रहन करते है फीर उनोंको शरीरपणे बन्धन करते है यथा—औदारीक औदारीकका बन्धन, औदारीक तेजसका

वन्धन, औदारीक कारमाणका वन्धन, औदारीक तेजस कारमाणका वन्धन, वैक्रय वैक्रयका वन्धन, वैक्रय तेजसका वन्धन, वन्धन. वैक्रयकारमाणका वन्धन. वैक्रिय तेजस कारमणका वन्धन। आहारीक आहारीकका वन्धन आहारीक तेजमका वन्धन. आहारीक कारमणका वन्धन आहारीक तेजस कारमणका वन्धन। तेजस तेजसका वन्धन. तेजस कारमाणका बन्धन. कारमाण-कारमाणका वन्धन। एवं १५।

(च) सघातन नाम कर्म कि प्रकृति है जो पौद्गल शरीरपणे ग्रहन कीया है उनोंकों यथायोग्य अनयव परो मजबुत वनाना। जेसे औदारीक संघातन, वैक्रयसंघातन आहारीक संघातन, तेजस सघातन, कारमाण संघातन।

(छ) संहनन नामकर्मकि छे प्रकृति है. शरीरकि ताकत हाडकि मजबुतिकों संहनन कहते है यथा वज्र ऋषभनाराच सहनन। वज्रका अर्थ है खीला. ऋषभका अर्थ है पाट्टा नाराचका अर्थ है दोनो तर्फ मर्कट याने कुंटीयाके आकार दोनो तर्फ हडी जुडी हुइ अर्थात् दोनो तर्फ हडीका मीलना उसके उपर एक हडीका पट्टा औंर इन तीनोंमें एक खीली हो उसे वज्रऋषभ नाराच संहनन कहते है॥ नाराच सहनन-उपरवत् परन्तु वीचमें खीली न हो। नाराच संहनन-इस्में पट्टा नही है। अर्द्ध नाराच सहनन-एक तर्फ मर्कट वन्ध हो दुसरी तर्फ खीली हो। किलीका संहनन-दोनो तर्फ अंकुडाकि माफीक एक हडीमें दुसरी हडी फसी हुइ हो। छेवट्टं संहनन-आपस में हडीयों जुडी हुइ है॥

(ज) संस्थाननामकर्मकि छे प्रकृतियों है—शरीरकी आकृतिको संस्थान कहते है समचतुरस्त्र संस्थान—पालटीसार के (पद्मासन) बेठनेसे चोतर्फ बराबर हो याने दोनों जानुके विचमें अन्तर है इतना ही दोनो स्कन्धोंके विचमें। इतना ही एक तर्फके जानु और स्कन्धके अन्तर हो उसे समचतुरस्त्र संस्थान कहते है। निग्रोध परिमंडल संस्थान नाभीके उपरका भाग अच्छा सुन्दर हो और नाभीके निचेका भाग हिन हो। सादि संस्थान—नाभीके निचेका विभाग सुन्दर हो, नाभीके उपरका भाग खराब हो। कुब्ज संस्थान—हाथ पैर शिर गर्दन अवयव अच्छा हो परन्तु छाती पेट पीठ खराब हो। वामन संस्थान—हाथ पैरादि छोटे छोटे अवयव खराब हो। हुंडक संस्थान—सर्व शरीर अवयव खराब अप्रमाणीक हो।

(झ) वर्णनामकर्मकि पांच प्रकृति है—शरीरके जो पुद्‌गल लागा है उन पुद्‌गलोंका वर्ण जैसे कृष्णवर्ण, निलवर्ण, रक्तवर्ण, पेतवर्ण, श्वेतवर्ण जीवोंके जिस वर्ण नाम कर्मोदय होते है वैसा वर्ण मीलता है।

(ञ) गन्ध नामकर्मकि दो प्रकृति है—सुभिगन्ध-नाम कर्मोदयसे सुभिगन्धके पुद्‌गल मीलते है दुर्भिगन्धनाम कर्मोदयसे दुर्भिगन्धके पुद्‌गल मीलते है।

(ट) रस नामकर्मकि पांच प्रकृति है—पूर्ववत् शरीरके पुद्‌गल तिक्तरस, कटुकरस, कषायरस, अम्लरस, मधुर रस, जैसे रस कर्मोदय होता है वेसे ही पुद्‌गल शरीरपणे ग्रहन करते है।

(ठ) स्पर्श नामकर्मके आठ प्रकृति है जिस स्पर्श कर्मका उदय होता है वेसे स्पर्शके पुद्गलोंकों ग्रहन करते है जैसे कर्कश, मृदुल, गुरु, लघु, शित, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष ।

(ड) अनुपूर्वि नामकर्मके च्यार प्रकृतियों है—एक गतिसे मरके जीव दुसरी गतिमें जाता हुवा विग्रह गति करते समयानुपूर्वि. प्रकृति उदय हो जीवकों उत्पत्तिस्थान पर ले जाती है जेसे वेचा हुवा वहलकों धणी नाथ गालके लेजावे जीस्का च्यार मेद नरकानुपूर्वि, तीर्यचानुपूर्वि, मनुष्यानुपूर्वि, देवआनुपूर्वि ।

(ढ) विहायगति नामकर्मके दोप्रकृतियों है जिस कर्मोदयसे अच्छी गजगामिनी गति होती है उसे शुभ विहायगति कहते है और जिन कर्मोदयसे खरवत् खराव गति होती है उसे अशुभ विहायगति कहते है । इन चौदा प्रकारकि प्रकृतियोंके पिंड प्रकृति कही जाती है अब प्रत्येक प्रकृति कहते है ।

१-पराघातनाम—जिस प्रकृतिके उदयसे कमजोरकों तो क्या परन्तु वडे वडे मल्लवाले योद्धाको भी एक छीनकमें पराजय कर देते है ।

उश्वासनाम—शरीरकि वाहारकि हवाकों नासीकाद्वारा शरीरके अन्दर खीचना उसे श्वास कहते है और शरीरके अन्दरकी हवाकों वाहार छोडना उसे उश्वास कहते है ।

आतपनाम—इस प्रकृतिके उदयसे स्वयं उष्ण न होनेपर भी दुसरोंको आतप मालुम होते है यह प्रकृति ' सूर्य ' के वैमानके जो वादर पृथ्वीकाय है उनोंके शरीरके पुद्गल है वह

प्रकाश करता है, यद्यपि अग्निकायके शरीर भी उष्ण है परन्तु वह आतप नाम नहीं किन्तु उष्ण स्पर्श नामका उदय है।

उद्योतनाम—इस प्रकृतिके उदयसे उष्णतारहीत–शीतल प्रकृति जेसे चन्द्र गृह नक्षत्र तारोंके वैमानके पृथ्वी शरीर है तथा देव और मुनि वैक्रिय करते है तब उनोंका शितल शरीर भी प्रकाश करता है। आगीया–मणि–औषधियों इत्यादिके भी उद्योत नामकर्मका उदय होते है।

अगुरुलघुनाम—जीस जीवोंके शरीर न भारी हो कि अपनेसे संभाला न जाय, न हलका हो कि हवामें उड जावे याने परिमाण संयुक्त हो शीघ्रता से हलन चलनादि हरेक कार्य कर सके उसे अगुरुलघु नाम कहते है।

जिननाम—जिस प्रकृतिके उदय से जीव तीर्थंकर पद को प्राप्त कर केवलज्ञान केवलदर्शनादि ऐश्वर्य संयुक्त हो अनेक भव्यात्मावोंका कल्याण करे।

निर्माणनाम—जिस प्रकृतिके उदय जीवोंके शरीरके अंगोपांग अपने अपने स्थानपर व्यवस्थित होते हो जेसे सुतार चित्रगार, पुतलीयोंके अंगोपांग यथा स्थान लगाते है इसी माफीक यह कर्म प्रकृति भी जीवोंके अवयव यथास्थान पर व्यवस्थित बना देती है।

उपघातनाम—जिस प्रकृतिके उदय जीवों कों अपने ही अवयव से तकलीफों उठानी पडे जेसे मस नहूर दो जीभों अधिक दान्त होठो से वाहार निकल जाना अंगुलीयों अधिक

इत्यादि । इन आठ प्रकृतियोंको प्रत्येक प्रकृति कहते है अब त्रसादि दश प्रकृति कहते है ।

त्रसनाम—जिस प्रकृतिके उदय त्रसपणा याने बेइन्द्रियादिपणा मीले उसे त्रसनाम कहते है ।

बादर नाम—जिस प्रकृति के उदय बादरपणा याने जिसको छद्मस्थ अपने चरमचक्षुसे देख सके यद्यपि बादर पृथ्वीकायादि एकेक जीव के शरीर दृष्टिगोचर नहीं होते हैं. तद्यपि उनोंके बादर नाम कर्मोदय होनेसे असंख्याते जीवोंके शरीर एकत्र होनेसे दृष्टिगोचर होसक्ते है परन्तु सूक्ष्म नाम कर्मोदयवाले असंख्यात शरीर एकत्र होनेपर भी चरमचक्षुवालों के दृष्टिगोचर नहीं होते है

पर्याप्त नाम—जिस जातिमें जितानि पर्याप्ती पाती हो उनोंको पूरण करे उसे पर्याप्तनाम कहते है पुद्गल ग्रहन करनेकि शक्ति पुद्गलोंको परिणमानेकि शक्तिकों पर्याप्ति कहते है ।

प्रत्येक शरीर नाम—एक शरीरका एक ही स्वामि हो अर्थात् एकेक शरीरमें एकेक जीव हो उसे प्रत्येक नाम कहते है। साधारण वनस्पति के सिवाय सब जीवोंके प्रत्येक शरीर है

स्थिर नाम—शरीर के दान्त हडी ग्रीवा आदि अवयव स्थिर मजबुत हो उसे स्थिर नाम कर्म कहते है

शुभनाम—नाभी के उपरका शरीरको शुभ कहते है

जेसे हस्तादिका स्पर्श होनेसे अप्रीति नही है किन्तु पैरोंका स्पर्श होते ही नाराजी आति है।

सुभाग नाम—कीसीपर भी उपकार कियों विगर ही लोगोंके प्रीतीपात्र होना उसको सुभागनाम कर्म कहते है। अथवा सौभाग्यपणा सदैव बना रहना युगल मनुष्यवत्

सुस्वर नाम—मधुरस्वर लोगोंकों प्रीयहो पंचमस्वरवत्

आदेय नाम—जिनोंका वचन सर्व मान्य हो आदर सत्कारसे माने।

यशःकीर्त्ति नाम—एक देशमें प्रशंसा हो उसे कीर्ति कहते है और बहुत देशोंमें तारीफ हो उसे यशः कहते है अथवा दांन तप शील पूजा प्रभावनादिसे जो तारीफ होती है उसे कीर्ति कहते है और शत्रुवोंपर विजय करनेसे यशः होता है। अब स्थावरकि दश प्रकृति कहते है।

स्थावर नाम—जिस प्रकृति के उदय स्थिर रहै याने शरदी गरमीसे बच नहीसके उसे स्थावर कहते है जैसें पृथ्व्यादि पांच स्थावरपणे में उत्पन्न होना।

सूक्ष्म नाम—जिस प्रकृति के उदय सूक्ष्म शरीर—जो कि छद्मस्थोंके दृष्टिगोचर होवे नहीं कीसींके रोकनेपर रूकावट होवे नही. खुदके रोका हुवा पदार्थ रूक नहीसके। वैसे सूक्ष्म पृथ्व्यादि पांच स्थावरपणेमे उत्पन्न होना।

अपर्याप्ता नाम—जिस जातिमें जितनि पर्याय पावे उनोंसे कम पर्यायवान्धके मर जावे, अथवा पुद्गल ग्रहनमें असमर्थ हो।

साधारण नाम—अनत जीव एक शरीरके स्वामि हो अर्थात् एक ही शरीरमें अनंत जीव रहते हो. कन्दमूलादि.

अस्थिर नाम—दान्त हाड कान जीभग्रीवादि शरीरके अवयवों अस्थिर हो—चपल हो उसे अस्थिर नामकर्म कहते है।

अशुभनाम—नाभीके नीचेका शरीर पैर विगेरे जोकि दुसरोंके स्पर्श करतेही नाराजी आवे तथा अच्छा कार्य करनेपर भी नाराजी करे इत्यादि ।

दुर्भागनाम—कीसीके पर उपकार करनेपरभी अप्रीय लगे तथा इष्टवस्तुओंका वियोग होना ।

दुःस्वरनाम—जिस प्रकृतिके उदयसे ऊंट, गर्दभ जेसा खराब स्वर होते है उसे दुःस्वरनाम कहते है ।

अनादेयनाम—जिसका वचन कोइभी न माने याने आदर करनेयोग्य वचन होनेपर भी कोई आदर न करे।

अयशःकीर्तिनाम–जिस कर्मोदयसे दुनियोंमें अपयश अकीर्ति फैले, याने अच्छे कार्य करनेपरभी दुनियों उनोंको भलाइ न देके बुराइयोंही करती रहे इति नामकर्मकी १०३ प्रकृति है ।

(७) गोत्रकर्म–कुंभकार जेसे घट बनाते है उस्मे उच्च पदार्थ घृतादि और निच पदार्थ मदीरा भी भरे जाते है इसी माफीक

जीव अष्ट मदादि करनेसे निच गोत्र तथा अमदसे उच्च गोत्रादि प्राप्त करते है जीसकि दो प्रकृति है उच्चगोत्र, निच्चगोत्र-जिस्में इच्वाकुवंस हरिवंस चन्द्रवंसादि जिस कुलके अन्दर धर्म और नीतिका रक्षण कर चीरकालसे प्रसिद्धि प्राप्ति करी हों उच्चकार्य कर्त्तव्य करनेवालोंकों उच्च गोत्र कहते है और इन्होंसे विप्रीत हो उसे निच्चगोत्र कहते है ।

(८) अन्तरायकर्म जैसे राजाका खजांनची-अगर राजा हुकमभी कर दीया हो तों भी वह खजांनची इनाम देनेमें विलम्ब करसक्ता है इसी माफीक अन्तराय कर्मोदय दानादि कर नही सक्के है तथा वीर्य-पुरुषार्थ कर नही सके जीसकि पांच प्रकृति हे (१) दानअंतराय-जेसे देनेकि वस्तुवों मौजुद हो. दान लेनेवाला उत्तम गुणवान पात्र मौजुद हो. दानके फलोंकों जानता हो. परन्तु दान देनेमें उत्साह न वढे वह दानांतराय कर्मका उदय है.

दातार उदार हो दानकी चीजो मौजुद हो आप याचना करनेमें कुशल हो परन्तु लाभ न हो तथा अनेक प्रकारके व्यापारादिमें प्रयत्न करनेपरभी लाभ न हो उसे लाभान्तराय कहते है ।

भोगवने योग्य पदार्थ मौजुद है उस पदार्थोंसे वैराग्य भावभी नही है न नफरत आति है परन्तु भोगान्तराय कर्मोदयसे कीसी न कीसी कारणसे भोगव नहीं सके उसे भोगान्तराय कहते है जो वस्तु एक दफे भोगमें आति हो असानादि ।

उपभोगान्तराय—जो स्त्रि वस्त्र भूषणादि वारवार भोगनेमें आवे एसी सामग्री मौजुद हो तथा त्यागवृत्ति भी नहो तथापि उपभोगमें नहीं ली जावे उसे उपभोगान्तराय कहते है।

वीर्यान्तराय—रोग रहीत शरीर बलवान सामर्थ्य होनेपरभी कुच्छभी कार्य न कर सके अर्थात् वीर्य अन्तराय कर्मोदयसे पुरुपार्थ करनेमें वीर्य—फोरनेमें कायरोंकी माफीक उत्साहा रहित होतें है उठना बेठना हलना चलना बोलना लिखना पढना आदि कार्य करनेमें असमर्थ्य हो वह पुरुपार्थ करनही सकते है उसे वीर्य अन्तरायकर्म कहते है इन आठों कार्मोकी १५८ प्रकृतिको कंठस्थ कर फीर दुसरे अंकमे कर्मबन्धनेका तथा कर्म तोडनेके हेतु लिखेगे उसपर ध्यान दे कर्मबन्धके कारणोंको छोडनेका प्रयत्न कर पुराणे कर्मोका क्षय कर मोक्षपद प्राप्त करना चाहिये इति

सेवंभंते सेवंभंते तमेवसच्चम्



४५ आगमों का संक्षिप्त विवरण.

इग्यारा अंगसूत्रों कि सूची.

(१) श्री आचारांगजी सूत्र श्रुत स्कन्ध २ अध्ययन २५ उदेशा ८५ जिस्मे मुनियों का आचार विचार विनय व्यावच्च भाषा एषणा वस्त्रपात्र मकानादि ग्रहन तथा छेकाया जीवों कि प्ररूपणा और भगवान् वीर प्रभुका उज्वल जीवन है.

(२) श्री सूयगडायांगजी सूत्र श्रुत० २ अध्य० २३ उदेशा ३३ जिस्में स्वमत परमत कि प्ररूपणा मोक्षमार्ग उत्कृष्ट मुनिमार्ग, स्त्रिसंसर्गत्याग, नरकदुःख, वीरप्रभुकि स्तुति च्यार समोसरण इत्यादि विस्तार है।

(३) श्री ठांणायांगजी सूत्र ठाणा १० उद्देशा २१ एक बोलसे दश बोलोंका संग्रह है जिस्मे च्यारों अनुयोगके अन्दर नय निक्षेप गर्भीत विविध विषयकी ३२०० चोभंगीयोंका निरूपण है.

(४) श्री समवायांगजी सूत्र-जिसमें एक बोलसे कोडाकोड बोलोंका संग्रह है इसमें भी नय निक्षेप अपेक्षा स्याद्वाद-अनेकान्त मतका प्रदर्शन और तीर्थंकर चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव भूत भविष्य तथा उनोंके मातापिता दीक्षातिथी आदि विविध विषयका अच्छा खुलासा है।

(५) श्री भगवतीजी सूत्र मूल शतक ४१ अंतर

शतक १३८ वर्ग १६, उदेशा १६२५ जिस्मे गुरु गौतमस्वामीके पुच्छे हुवे ३६००० प्रश्नोंका उत्तर तथा अन्य महात्माओंके या अन्य तीर्थीयोंके प्रश्नोंका वडाही असरकारी उत्तर अर्थात् च्यारों अनुयोगोंका एक वडाभारी खजाना है।

(६) श्री ज्ञानाधर्म कथा सूत्र श्रुत० २ अध्ययन १६ तथा २०६ जिस्मे पहले श्रुतस्कंधमें मेघकुमारादि १८ न्यायके दृष्टान्त दे के उनोंकि उपनय मुनियोंपर उत्तारके साधु साध्वीयोंको हितशिचा दी गइ है दुसरे स्कन्धमें पार्श्वनाथ प्रभुके शासन कि २०६ साध्वियोंका शीथिलाचार–सरल स्वभाव–एकावतारी होना या द्रोपदि महासतीकि १७ प्रकारकि पूजा वतलाइ है।

(७) श्री उपाशक दशांग सूत्र अध्ययन १० जिस्मे आनन्दादि दश श्रावकों कि ऋद्धि व्रत ग्रहन शासन सेवा चैत्योपासना परिसह सहन प्रतिमा प्रतिपालन स्वर्गगमन एकावतारीपणा वतलाया है.

(८) श्री अंतगढ दशांगसूत्र वर्ग ८ अध्य० ६० जिस्में गौतमकुँमारादि दीचा ग्रहन कर घोर तपश्चर्या कर अन्त समय श्री शत्रुंजय वेभारगिरि आदि तीर्थोपर अनसन कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोच गये उनोंके उज्वल चरित्र है एमन्ताकुँमर अर्जुनमाली देवकीमाताके छे पुत्र श्रीकृष्ण तथा उनोंकी आठ अग्रमहिषीयों द्वारकादहन श्रीकृष्ण भविष्यमें तीर्थंकर होगा इत्यादि रसीक संबन्ध है.

(९) श्री अनुत्तरोववाइ सूत्र–वर्ग ३ अध्य० ३३

जिस्मे ३३ मुनियोंकी दीक्षा उग्र तपश्चर्या जिस्में भी धन्नामुनि कि तपश्चर्या और उनोंके शरीरका विशेष वर्णन वडाही आश्चर्यकारी है सर्व अनुतर वैमानोंके सुखोंका अनुभव कर मनुष्य हो मोक्ष जावेगे.

(१०) श्री प्रश्नव्याकरण सूत्र श्रु० २ अध्य० १० जिस्में पांच आश्रव द्वारमें जीव हिंस्या करना, झूठ बोलना, चौरी करना, मैथुन सेवना, परिग्रह कि ममत्त्व वढाना इसका फल नरकमें जाना। अनेक जन्म मरणादि संसारमें परिभ्रमन करना और अहिंसा सत्य अदत्त ब्रह्मचर्य अममत्त्व वह पांच संवरद्वारके फल यावत् मोक्ष–व्याकरणादि पढके सूत्र वाचना ब्रह्मचर्य कि ३२ ओपमा इत्यादि ।

(११) श्री विपाकसूत्र–श्रुतस्कन्ध २ अध्य० २० जिस्मे मृगादि दश० जीवोंके पूर्वभवोंके दुष्कर्म–पापाचरणों के फल दुःखोंका अनुभव और सुबाहुकुँमरादि दश जीवोंकें पूर्व भवोंमें पुण्याचरणा दांनमहात्म्यका सविस्तार वर्णन है इन सूत्र के श्रवण करनेसे संसार दशाका ठीक अनुभव हो सकता है ।

बारहा उपांग सूत्रोंकि सूची.

(१) श्री उववाइजी सूत्र–जिस्में चम्पानगरी के वर्णनमें बडे बडे आकारवाले सिखरवन्ध जिनमान्दिरों से सुशोभित–नगरी है तथा पूर्णभद्रोद्यान पूर्णभद्र यक्षका मन्दिर आशोकवृक्ष पृथ्वी

शीलापट राजा-राजनिती प्रधान स्याम भेद दंड अर्थोपार्जन विद्या-राणी महिलावों कि कला, तीर्थंकर वर्णन तीर्थंकरोंका अतिशय प्रतिहार समौसरण मुनि आगमन मुनिगुण प्रभु देशना-इन्द्रादि वारहा परिपदाका वर्णन प्रभु देशनाका सत्कार मत्तमत्तान्तर के २२ प्रश्न- अम्बड श्रावकाधिकार इत्यादि यह सूत्र वर्णनिक है.

(२) श्री रायपसेनीजी सूत्र-जिसमें अधर्म कि ध्वजा प्रदेशीराजा तथा सूरीकान्तराणी, चितप्रधान. श्री केशीश्रमणाचार्य का उपदेशमे प्रदेशी राजाका कल्याण. याने सुरिया देव होना श्री जिनप्रतिमा कि १७ प्रकारसे पूजाका करना पूजा मोक्ष फल कि दाता है देवतावोंके वैमानका सविस्तर वर्णन ३२ प्रकारका नाटकसे प्रभुभक्ति इत्यादि.

(३) श्री जीवाभिगमजी सूत्र प्रवृति ९ जिस्में जीवादि पदार्थ-उर्ध्वअधो तीर्यग्लोक का वर्णन असंख्यात द्विपसमुद्र का वर्णन सूक्ष्म वादरनिगोद का वर्णन. विजयदेव प्रतिमापूजा तथा राजधानि इत्यादि.

(४) श्री पन्नवणाजी सूत्र पद ३६ जिस्में. जीवाजीवके स्थान, अल्पावहुत्व, स्थिति, पर्यव, उत्पात, चवन, श्वासोश्वास, संज्ञा, योनि, चर्माचर्म, भाषा, शरीर, प्राणाम, कषाय, इन्द्रिय, योग, लेश्या, दृष्टि, कायस्थिति, अन्तक्रिया, शरीरावगाहान, क्रिया, कर्म, आहार, उपयोग, सन्नी, संयति, वेदना, प्रचारणा, समुद्घात, इत्यादि द्रव्यानुयोगका खजाना है.

(५) श्री जम्बुद्विप पन्नाति सूत्र—जिस्मे तीर्थंकर चक्रवर्त, छे आरा, जम्बुद्विपमें भरतादि क्षेत्र, चुलहेमवन्तादि पर्वत गंगादि नदी, द्रुक विजय तीर्थ श्रेणि आदि दश द्वारोंसे जम्बुद्विपका वर्णन है और ज्योतीपीयोंका संक्षेपसे वर्णन हैं।

(६) श्री चन्द्रपन्नाति सूत्र पाहुड़ा २० जिस्मे चन्द्र सूर्य गृह नक्षत्र तारोंका वर्णन है ज्योतिपीयों के मंडला चाली कुला उपकुला नक्षत्र नक्षत्रों के तारा—संस्थान नक्षत्रों के देव अलग अलग नक्षत्रोंका भोजन कार्यकि सिद्धि इत्यादि.

(७) श्री सूर्यपन्नाति सूत्र पाहुडा २० जिस्मे सूर्य, सूर्य के मंडले चाली नक्षत्र गृह—शुभाशुभ नक्षत्रों के देवता उनों के भोजन जिनोंसे कार्य की सिद्धि अर्थात् अमुक नक्षत्र के दिन अमुक ध्यान करनेसे अमुक कार्य कि सिद्धि होती है इसकी विधिका वर्णन है। ज्योतिपीयों का वर्णन सविस्तार है।

(८) श्री निरियावलिका सूत्र अध्य० १० जिसमें श्रेणिक राजा के काली आदि दश कुँमरों के अन्तरगत कोणक राजा वहल कुँमर के हार हाथी का विवादमें चेटक राजा और कोणक राजा का वडा भारी संग्राम का वर्णन है.

(९) श्री कप्पवडंसिया सूत्र अध्य १० जिस्मे कालिआदि दश भाइयों के पद्मादि दश पुत्रोंने दीक्षा ग्रहन कर स्वर्गगमन कियों का वर्णन है.

(१०) श्री पुष्फयाजी सूत्र अध्य० १० जिस्मे चन्द्र सूर्य्य शुक्रादि दश देव देवी भगवानकों वन्दन करनेको आये ३२ प्रकारका नाटक किया सोमल ब्राह्मणके प्रश्नादि जिनोंके पूर्व भवका वर्णन एकावतारी यावत् मोक्षमें जावेंगे।

(११) श्री पुष्फचूलिया सूत्र अध्य० १० जिस्मे श्री-देवी आदि १० देवीयों भगवान्कों वन्दन करनेकों आइ ३२ प्रकारका नाटक भक्ति करी जिनोंका पूर्व भवका वर्णन है।

(१२) श्री विन्हीदशा सूत्र अध्य० १२ जिस्में द्वारा-मति नगरी श्रीकृष्ण नरेश–बलदेवराजा–धारणी राणींके निषेढादि १२ राजकुमरोंकी दीक्षा वर्णन है.

दश पयन्ना सूत्रों कि सूची.

(१) चउसरण पयन्ना (२) सथार पयन्ना (३) भत्त पयन्ना (४) आउरपच्चख्खाण पयन्ना (५) महापच्चख्खाण पयन्ना इन पाचों पयन्ना सूत्रोंमें आलोचना व्रतविशुद्धि भात्तपाणीका त्याग अन्त समय प्रत्याख्यान भावनाविशुद्धि, कषाय शीतलता आत्मभावना अनित्यभावना असरणभावना आराधिकभावना एकत्वापणा कि भावना इत्यादि वर्णन है.

(६) ज्योतिष करांड पयन्ना (७) गणी विभ्भिय पयन्ना इन दोय पयन्नोंमें ज्योतिषीयोंकि विषयका सविस्तार वर्णन है।

(८) देवींन्द्र पयन्नामें च्यार जातिके देवतावोंका संक्षेपमें अच्छा बोधकारी वर्णन कर बतलाया है ।

(९) तंदुल वीयालीक पयन्नामें सो वर्षके आयुष्य-वालों कि दश दशाका वर्णन है इस अनित्य शरीरमें नाडी कोटे नसों पैसी गर्भ स्थिति आदि डॉक्टरी विषय है.

(१०) गच्छाचार पयन्नामें गच्छ संबन्धी अच्छे अच्छे प्रबंध है साध्वीयोंका परिचय निषेध अगर साध्वीयों वन्दना करे तों मुनियोंसे १२ हाथ दुरांसे करे साध्वीयोंका लाया हुवा आहारपाणी वस्त्रपात्र उपकरण साधुयोंके काम नहि आवे गच्छवासी साधु साध्वीयोंकों वाडा ही उपयोगी है इत्यादि ।

छे छेद सूत्रों कि सूची.

(१) श्री बृहत्कल्पसूत्र उद्देशा ६ जिस्मे साधु साध्वीयोंका कल्प अकल्प बतलाया है दीक्षा लेते समय कीतना वस्त्रपात्र रखना ज्ञानके लिये अन्य गच्छमें जाना कषाय शीतलता इत्यादि वर्णन है.

(२) श्री व्यवहार सूत्र उद्देशा १० । मुनियोंके व्यवहारका उत्सर्गोपवादमार्ग, आलोचना लेने कि विधि आचार्यादिका योग न होतों श्री जिन प्रतिमाके सन्मुख भी आलोचना क-रना. पद्वियोग होनेसे आचार्यादि सात पद्वि देना. देनेपर भी अयोग हो तो संघ मील पद्वि छोडा भी सके. साधु साध्वी-योंको आचारांगसूत्र निशिथसूत्र भणीयों विनों आगवान

विहार–गोचरी–व्याख्यान–तथा वार्तालाप तक भी नहीं करना इत्यादि सविस्तार वर्णन है।

(३) श्री दशाश्रुत स्कन्ध अध्य० १० जिसे मुनियोंके असमाधि दोष, सवलदोष, गुरुकि ३३ आशातना, चितसमाधि स्थान, गणिकि आठ संप्रदाय, श्रावक साधु प्रतिमा, तीस महा मोहनियकर्म बन्ध स्थान, और नौ निदानका सविस्तार वर्णन है।

(४) श्री निशिथसूत्र उदेशा २० प्रत्येक उदेशाओंमें साधु साध्वीयोंके प्रमादादिसे लगे हुवे दोषों कि आलोचना तथा आलोचना करनेवाला–देनेवालाका वर्णन किया है उत्सर्गोपवाद मार्गका विशेष वर्णन हैं।

(५) श्री महा निशिथसूत्र अध्य० १३ जिस्मे पाचमार कि कर्मलीला, आचार्य साधु साध्वी श्रावक श्राविकाओं नाम धाराणेवालोंकि गति तथा पांचमारेमें एकावतारी होगें–कमलप्रभाचार्य–सुमतिनागल आदि विविध विषय उत्सर्गोपवादका विशेष वर्णन है।

(६) श्री जीतकल्पसूत्र- जिस्मे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, समयानुसार, मोक्षमार्ग साधन–आलोचना विषय साधु श्रावकोंके व्रतविशुद्धि ओघीक उपगृहीक उपकरणोंका वर्णन है समयानुसार मुनि मार्गका वर्त्तन विशेष है।

च्यार मूलसूत्रों कि सूची.

(१) श्री आवश्यक सूत्र अध्य० ६ जिसमें साधु

श्रावकोंके आवश्य करने योग्य प्रतिक्रमण सूत्र है. इनोंसे संबन्ध रखनेवाले अन्य विषय भी बहुत है।

(२) श्री उत्तराध्ययन सूत्र अध्य० ३६ जिसमे विविध विषय वैराग्यमय तथा ब्रह्मचर्य कि नौ वाड मोक्षमार्ग अष्टप्रवचन साधु समाचारी कपिलमुनि हरकेशीमुनि संयति--मृगापुत्र अनाथी- समुद्रपालादि और भी उच्चकोटीका मुनि मार्ग षट्द्रव्य, नवतत्त्व कर्मलेश्या जीवादिका प्रतिपादन अच्छा कीया है।

(३) श्री दशवैकालिक सूत्र अध्य १० जिसमें मुनियोंके आचार व्यवहार तथा भिक्षावृति आदिका वर्णन है।

(४) श्री ओघनिर्युक्ति सूत्र--जिसमें विविध विषय है मुनियोंकों पात्रे कीतने प्रमाणवाले दंडा- चदर चोलपटा उत्तरपटा आदि सबका प्रमाण है. तथा आहार विहार आदिका विस्तारसे वर्णन है। एवं ११-१२-१०-६-४ मीलके ४३

(४४) श्री नन्दीजी सूत्र--जिसमें पांचज्ञानका सविस्तार वर्णन है श्रुतज्ञानाधिकारे द्वादशांगीसे ले कें ७३ आगम औंर प्रकरणादिका सविस्तार वर्णन कीया है।

(४५) श्री अनुयोगद्वार सूत्र--जिसमें नय निक्षेप द्रव्य प्रमाण सामान्य विशेष अणुपूर्वी अनानुपूर्वी पच्छाणुपूर्वी छे भाव सात स्वर--तीन ग्राम इकवीस मुर्च्छना छे दोष आठ गुण याने संगीत विषयका अच्छा विवरण कीया है.

इन पैंतालीस आगमोंपर पूर्वाचार्योंने वडेही विस्तारसे निर्युक्ति टीका चूर्णी भाष्य वृत्ति अवचूरी छाया टीपण और वालवबोध रचके जैन समाजपर वडा भारी उपकार कीया है विशेष जैनागमोंमें नितीधर्म, गृहस्थधर्म, सदाचार, व्यवहार-शुद्धि, ७२ कलाओं. १४ रत्न, न्याय भावना, अहिंस्यादि धर्मके साथ सम्यक्त्वधारी राजा महाराजा सेठ सेना-पतियों ने जिनमन्दिर–तीर्थोंका जिर्णोद्धार–जिनप्रतिमा कि पूजा शासन प्रभावना शासनोन्नति करी जिस्का वर्णन तथा जैन श्रावक लोगोंने मन्दिर बनाया प्रभु पूजा प्रभावना सामा-यिक प्रतिक्रमण पौषद प्रतिमा धारण करी का वर्णन और जैन मुनियों तप संयम ज्ञान ध्यानसे आत्मकल्याण कीया उनोंका वर्णन है विशेष खुलासा तबही हो सके कि गीतार्थ मुनि अपने शिष्योंकों आगमों कि वाचना दे तथा श्रावक वर्ग गी-तार्थ गुरु महाराजों कि सेवा भक्ति कर सूत्र सुने जो मनुष्य जन्म धारण कर जैन सिद्धान्तोंका आद्योपान्त श्रवण नहीं कीया है वह मानों अपना अमूल्य मनुष्य जन्मको निरर्थक ही खोके चला गया है " सुयरयणस्स दुलहा " आगमोंमें कहा है कि सूत्ररत्न मीलना दुर्लभ है.

सोचा जाणइ कल्लाणं, सोचा जाणइ पावयं ।
उभयपि जाणइ सोचा, जं सेय तं समाचरे ॥ १ ॥

सेवंभंते सेवंभंते तमेवसच्चम् ।



खुश खबर.



(१) द्रव्यानुयोग द्वितिय प्रवेशिका कि. ≈) १०० नकलोंका रु १०) ५०० नकलोंका रु ४५) १००० नकलोंका रु ८०)

(२) विवाहचूलिका तथा वंगचूलिका कि. ≈) १०० नकलका रु. १०)

(३) भावप्रकरण तथा स्तवन संग्रह भाग ४ था भेट.

(४) बारहा सूत्रोंका हिन्दी भाषान्तर. रु. ४)

(५) शीघ्रबोध भाग १२ पुस्तकोंकि रु. ३)

(६) हिन्दी संस्मरनामा रु. ०॥

१ पत्ता—श्री जैन युवक मित्रमंडळ.
मु. लोहावट-(मारवाड)

२ श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला.
मु० फलोधी-(मारवाड)



श्री स्तवन संग्रह भाग ४ जो.





प्रकाशक.

श्री ज्ञानप्रकाश मण्डल.

मु० रूण–पोष्ट खजवाणा.

धन्यवाद.

इस किताबकी छपाइ एक समाज हितैषी महाशयने देके समाजसेवाका पवित्र लाभ उठाया है वास्ते हम सहर्ष धन्यवाद देते है। अन्य दानवीरोंसे यह मण्डल प्रार्थना करता है कि आप ऐसे उपयोगी कार्योंकी तरफ अवश्य लक्ष दीजिये फक्त।

भावनगर—धी आनंद प्रीन्टींग प्रेसमां शा. गुलाबचंद लल्लुभाइए छाप्युं.

श्री स्तवनसंग्रह भाग १ जो.



निवेदन नम्बर १

ज किंचि नाम तित्थं । सग्गे पायालि माणुसे लोए ।
जाइं जिण विंबाइ । ताइं सव्वाइं वंदामि ॥ १ ॥

(आवश्यकसूत्र)

जैन तीर्थ और जिनप्रतिमाको नमस्कार करने में यह सूत्रपाठ स्पष्ट बतला रहा है कि स्वर्गलोक पाताललोक और मनुष्यलोक मे जो जैनतीर्थ और जिनप्रतिमाए है उन सभी को मै नमस्कार करता हू। इन शास्त्रीय शब्दों मे मनुष्यो के लिये अतिशय फायदा रहा हुवा है कारण जैनतीर्थ या जैन प्रतिमाए चौवीस तीर्थकरो पैकी कीसी भी तीर्थकरोके नामसे हुवा करती है और सेवा भक्ति वन्दन करनेवाले महानुभावों की आत्मभावना भी उन तीर्थंकरों को नमस्कार करनेसे निकमित हुवा करती है वास्ते जितना फायदा तीर्थकरों की सेवा भक्ति या नमस्कार करने मे होता है उतनाही तीर्थकरों की प्रतिमा की सेवाभक्ति या नमस्कारसे होता है इस लिये ही ज्ञातासूत्र अ० ८ वामें बतलाया है कि–अरिहन्तों की भक्ति करनेसे जीव तीर्थंकर नामकर्मोपार्जन करता है।

यह बात तो निर्णय पुरःसर है कि धर्मका आधार इष्टदेव–(वीतराग देव) और उनके कथित सिद्धांतो पर ही निर्भर है और "इष्ट विगर मनुष्य भ्रष्ट" समझा गया है इसीलिये ही इस आर्यभूमिपर समाजके अग्रेसरोंने हजारों लाखो और क्रोडों रूपैये खरचकर अपने इष्टदेवोंका देवालय बन्धाये थे और बन्धा रहे हैं उन मन्दिरों की सेवा भक्ति, दर्शन या उपासना करनेसे कीतना फायदा है इसपर आप सज्जन निष्पक्षपात दृष्टिसे ध्यान दिजिये ।

(१) प्रतिदिन मन्दिरजी में जाकर वीतराग प्रभुके दर्शन करनेसे श्रद्धा मजबूत होती है और धर्मका गौरव बना रहता है ।

(२) उपदेशकों के अभावसे भी जैनमन्दिरोंके जरिये धर्म-पालन करसक्तें है ।

(३) जहांपर मन्दिर नहीं है वहां हजारों लोग धर्मभ्रष्ट हो गये और होते जा रहे हैं ।

(४) मन्दिरजी के दर्शन करनेसे परभव भी सुधर जाता है ।

(५) मन्दिरजी के दर्शन करनेसे आत्मा पाप–अत्याचारों से बंच के सदाचारी बन सकता है ।

(६) मन्दिरजी के दर्शन करनेसे उसपर अधिष्टायक सदा प्रसन्न रहता है । दुसरे देवी देवताओं को सिरझूकाने की आवश्यक्ता नहीं रहती है सचे दीलसे अधिष्टायक देवपर विश्वास रखनेसे वह सर्व मनोकामना पूर्ण करता है ।

(७) सुबह–प्रात काल उठके पवित्रतासे मन्दिरजी के दर्शन करनेवाले उतनी टाइम समारी प्रपचोंसे या परनिंदासे वच जाते हैं और नमस्कारादि भक्तिका लाभ भी हो जाता है।

(८) मन्दिरजी के निमित्त चावल बादाम सोपारी इत्यादि द्रव्य का हमेशा शुभ क्षेत्रमें दान होनेसे पुण्यानुबंधी पुन्यवृद्धि हुआ करती है।

(६) निवृत्तिके स्थान (मन्दिरजी) में ध्यान लगानेसे अपने कीये हुवे पापोंका प्रायश्चित्त–क्षमा याचाना करनेसे वह पाप हलका पड़ता है भावना बड़ा अच्छी रहती है अध्यवसाय निर्मल रहता है परमेश्वरकी शान्तमुद्रा के दर्शनसे वैराग्य भावकी प्राप्ति होनेसे आयुष्यभी अच्छी गतिका बन्धता है इस वास्ते आत्मकल्याण का मुख्य साधन–कारण जैन मन्दिर और प्रतिमा ही मानी गइ है।

इत्यादि अनेक फायदा जैनमन्दिरोंसे प्रत्यक्षमें दीखाइ दे रहे हैं जिस जमानामें जैनमन्दिरों की उत्साह पूर्वक सेवा–भक्ति होती थी उस जमानामें हमारी जैन समाज तनसे क्रोडोंकी संख्यामें थी धनसे बडी भारी आबाद थी एकेक धर्म कार्योंमें लाखो–क्रोडो द्रव्य एकही आदमी खरच कर सक्ता था और कीया भी है और मनकी कितनी मजबूती थी की वह जैनमन्दिरोंके सिवाय कीसी भी देवदेवीको सिर नही झूकाता था। जैनधर्मपर दृढ श्रद्धा के साथ पावन्दी रखा करते थे इस आर्यभूमिपर एसा स्वचित ही ग्राम मिलेगा कि जहा जैनोंकी वस्ती होनेपर उस ग्राममें मन्दिर न हो लाखो क्रोडो रुपैये तो क्या परन्तु जैनमन्दिरोंके लिये हमारे पूर्वजो प्यार प्राणतक देनेको तय्यार

रहते थे और मौकेपर दीये भी है और आज भी देनेको तय्यार है।

अफसोस है कि कुच्छ अरसों से हमारी समाज में धर्मभेद और सामुदायिक झगडोंसे जिनके पूर्वजोंने लाखो रूपैये लगाके मन्दिर बनवाये थे आज वह ही लोक मन्दिरजी के दर्शनोंसे वंचित रहते हैं। आश्चर्य इस बातका है कि जिन देवी देवताओं के पास अनेक भैंसा और बकरोंका बलीदान होता है वहां जानेमं तो वह लोक बिलकुल संकोच नहीं करते हैं अर्थात् बेधडक जाया करते है और खास अपने इष्टदेव का मन्दिर है वहां जानेमें अनेक प्रकारकी तकरारें खडी कर देते हैं अगर कोइ सवाल करे कि वहांतों हम सांसारिक सुखोंकी प्रार्थना के लिये जाते हैं ? उत्तरमे मालुम हो कि क्या उन देवीदेवताओं जीतना भी चमत्कार तुमारे जैन अधिष्ठायक देवोंमे नहीं है ? अगर हे तो मांसभक्षी अन्य देवोंके वहां जानेकी क्या जरूरत है ? आप जैन अधिष्ठायक देवोंके आगे प्रार्थना करो वह आप की मनोकामना अवश्य पूर्ण करेगा। केसरियाजी—फलोदी—ओसीयों आदिके अधिष्ठायक एसा चमत्कारी है कि अजैन लोक भी अनेक फायदा उठा रहे है तो आप क्यों वंचित रहते है।

जैन समाजकी आज पतित दशा होनेका मुख्य कारण ही जैनमन्दिरों की आशातना है परमेश्वर के मन्दिरोंमें आनन्द मंगल भक्तिभाव नहीं है तो गृहस्थों के घरोंमें आनंद मंगल कहांसे होवे परमेश्वर तो वीतराग हो गये पर हम अभी तक वीतराग नहीं हुवे है। हमको अभीतक सब बातोंकी जरूरत है गृहस्थलोक सब तरहसे समृद्ध

होगा तबही वह धर्म कार्य कर सकेगा। और समृद्ध होनेका कारण वही जैनमन्दिरो की भक्ति है। इस वास्ते हमे हमारे पूर्वजों के पथपर चलने की खास जरूरत है।

देखिये, जिनमन्दिरों की आशातनाका क्या फल हुवा ? जहा हजारो घर थे वहा मात्र सौ–पचास घर रह गये हैं केइ ग्राम तो शून्य स्मशान तरय हो गये है।

हमे बडे ही दुःख के साथ कहना पडता है कि कीतनेक ग्रामोंमें तो जैनोकी बस्ती होनेपरभी जैनमन्दिर अपूज रहते है जहा ठाकुरजी भैरूजी की पूजा होती है–वहा जैनमन्दिर अपूज रहते है क्या यह हामरा अध पातका कारण नहीं है ?

जिन ग्रामोंमे मन्दिरजी की आमद है पोतामें हजारो रूपैये ओसवालें में जमा है उस देवद्रव्यको ग्रामसाही रगडे झघडो में खरच कर देते है, पचायती काम भी देवद्रव्यमें करते है मागणियार या नानगसाही फकीरोंकी भी इसी देवद्रव्यसे ही देते है क्या इस महान् पापसे समाज गलनाने और महान् दुःखोंमे व्याप्त बन जाने तो कोई आश्चर्य कर सक्ते हैं ?

श्रीमान वीरविजयजीने कहा है कि —

आशातना करता थकां धन हाणी, हारे भुख्यां न मळे अन्न पाणी;
हारे काया पण रोगे भराणी, हारे आ भवमां एम ॥ तीरथ ॥१॥
परभव परमाधामीने वश पडशे, हारे वैतरणी नदीमां भळशे;
हारे अग्निने कुंडे जलशे, हारे नहीं शरणो कोय ॥ तीरथ ॥२॥

इन वचनोंपर ख्याल अवश्य करना चाहिये की जैनमंदिरों की आशातनाका फल इस भव और परभवमें कैसा मीलता है ?

धर्मभेद और समुदायिक झघडोंसे हमे एक मंदिरजी की आशातनाका ही नुकशान नहीं हुवा है पर न्याति जातिमें भी इतना कुसम्प—फूट वढ गइ है कि हमारी न्यातिका गौरव मट्टीमें मील गया है संघ शक्ति और न्याति मर्यादाओं शिथिल पडजानेसे समाज आज केइ प्रकारके कलंकसे कलंकित हो रही है । जो छोटी छोटी जातियों ओसवालों की वडी भारी अदब रखती थी वह आज हमारी फूटसे ओसवालों को कोइ चीज भी नहीं समजती है वल्के ओसवालोंपर केइ प्रकारका हुमला करनेको तैयार हो जाते है यह सब हमारा धर्म-भेदसे आपसकी फूटकाही मुख्य कारण है ।

अन्तमें हम यह निवेदन करना चाहते है कि मारवाडके मंदिरों की आशातनासे ही मारवाडी जैनसमाज दिनप्रतिदिन रसातल को पहुंच रही है इसके बचानेका प्रथम यही उपाय है की आपसमें सम्पके साथ जिन ग्रामोंमे जैनमंदिरोंकी आशातना होती हो उसें शीघ्र-तासे मीटानेका प्रवन्ध करीये अगर आपसे वह प्रवन्ध नहीं बन सके और अन्य कोइ धर्मप्रेमी आशातना मीटानी चाहे तो उनको यथाशक्ति तन मन और धनसे मदद करीये कारण मारवाडके मंदिरोंकी आशा-तना का पापफल और गुजरात के मंदिरों की भक्तिका पुन्यफल आपकी दृष्टिके सन्मुख प्रत्यक्षमें दीखाई दे रहा है " भागो पीछे बावडे, ताकु ही रंग लगाव " इस मारवाडी कहावतके अनुसार अब

भी सावधान होगें तो जैनोका गौरव बहुत है जैनोंके पास खर्च करने को बहुत द्रव्य है जैन चाहे सो अबी भी करसक्ते है अधिष्ठायक जैन-समाजको सद्बुद्धि दे कि वह मारवाडके मन्दिरोंकी आशातना मीटाने भाग्यशाली बने।

जैन मन्दिरों के लिये खास सूचनाएँ.

(१) जैन मन्दिरों की पूजादि का इन्तजाम अच्छा हो वहा समाज सब तरहसे सुखी रहती है पूजादि का इन्तजाम जहा ठीक नहीं है वहा समाज दु:खी दलीद्री बन जाती है।

(२) जैन मन्दिरों में कुडा कचरा जालादि न रहने पावे।

(३) पूजा में काम आनेवाले बरतन वस्त्र साफ रखना।

(४) मन्दिरों का हिसाब साफ रखना चाहिए। साल भर में एकवार श्री सघ को बतावें या छपाके प्रगट करें।

(५) रात्री में दीपक यत्नासे करे दीवा काचका फान-समें रखे।

(६) चावल बादाम सोपारी वि० पट्टा पर रखे रोकड द्रव्य भंडारकी पेटीमें रखे।

(७) जिस मन्दिरका हीसाब साफ हो वहा ही पर अधिक रकम दे पर जहा हीसाबका पत्ता न हो व्यवस्था ठीक न हो वहा पैसा दे अपने भाईयोंको न डुबावें अर्थात् देवद्रव्यभक्षी बनाके पापका भागी न बने।

(८) मन्दिरको केवल पूजारीयोंके आधार पर न छोड दे। खुद देखरेख रखनी चाहिये।

(९) शीखरबंध मन्दिर पर ध्वजादंड अवश्य होना चाहिये अगर वह दंड तुटा या वांका हो तो शीघ्र शुभ महूर्तमें ठीक करवा दे नहीं तो उसकी जवाबदारी श्री संघपर रहती है। संघ में सुख आनंद नहीं रहता है।

(१०) मन्दिरों मे या शीखर पर पक्षीयोंका माला या झाड न होने पावे इसका पहिलेसे रक्षण करना चाहिये।

(११) मन्दिरों मे जहां तक बने वहां तक जैनोंको ही नोकर रखना चाहिये की आशातनाका भय न रहे।

(१२) हरेक जैन मन्दिरों में जघन्य १० उत्कृष्ट ८४ आशातना पालनी चाहिये और एकेक पुस्तक मन्दिरमें रखनी चाहिये या इस्तिहार भींत पर चीटका देना चाहिये।

जहां आशातना नहीं है और सेवा भक्ति है वहां जैन संघ तनसे मनसे और धर्मसे सदा आनंदित रहता है। इत्यलम्॥



॥ निवेदन नम्बर २ ॥

सज्जनो !

यह वात तो आप स्वयं जानते होंगे कि इस आर्य देशमें यह सुद्रढ मर्यादा थी कि अपनी लडकी के सासरेवालों के घरका अन्न

जल तक लेनेमें पुत्रीके मातापिता महान् अधर्म और बड़ा भारी पाप समझते थे और अगर कोई ऐसा अनुचित कार्य अर्थात् पुत्रीके वहाका अन्न जल या पैसा ले भी लेता तो अच्छे आदमी उसे घृणाकी दृष्टीसे देखते थे और उसके वहा न्याति जाति कार्योंमे अच्छे आदमी जानेमे संकोच तो क्या पर बड़ा भारी पाप समझते थे और न्याति जाति सम्बन्धि कोई भी उच्च कार्य उसके घरपर नहीं होता था— जिसमें भी ओसवाल जातिमें तो ऐसे अनुचित्त कार्योंको बिलकुल भी अवकाश नहीं मिलता था, चाहे सामान्य आदमी हो वह भी कंकु कन्या हाजर कर देता था, इसी कारणसे ओसवाल जाति सब जाति-योंमें उच्च कहलाती थी, इसी कारणसे ओसवालो की इज्जत-आवरू अक्कल सघशक्ति न्यातिजातिका प्रबन्ध, बुद्धिकी निर्मलता और धर्म बर्ताव दुनियामे दूसरी जातिया से चढ बढ के था। अन्य जातियातो क्या पर राजा महाराजा भी ओसवाल जाति को बड़ेही इज्जतकी दृष्टीसे देखते थे उस जमानेमें जैनो की संख्या क्रोडों की तादादमें थी। इति-हास कहता है कि राजा सप्रति के समय जैनजनता चालीस क्रोड तथा राजा कुमारपाल के समय बारहक्रोड और बादशाह अकबर के समय एक क्रोड की संख्या में थी और हिन्द के चोतरफ बडीही आबादी भोगव रही थी। धनके बारेमे कहने की आवश्यकता नहीं है—जैनोने एकेक सघ निकाल तीर्थयात्रामें क्रोडो रुपया एकेक मन्दिर के बनवाने में लाखो रुपया एकेक आचार्यों के पद महोत्सव में लाखों रुपया एकेक दुष्कालमें, दानशालाओं मे लाखो क्रोडों रुपया खर्च किया, उस समय ओसवाल जाति के पास न जाने लक्ष्मीदेवी का क्या वरदान

था कि उसके द्रव्य की गिणना कुवेर भी स्यात् कर सकता था जैसे जैन तन धनसे बलिष्ट थे वैसी ही मनके भी बडे मजबूत थे, जिन्हों की शौर्यता आज भी विख्यात है यह सब सदाचार का ही प्रभाव था।

अब सवाल यह उत्पन्न होता है कि इसतरह उन्नति के शिखर पर पहुँची हुई जैनसमाज आज रसातल क्यों जा रही है। इसका कारण क्या है ? उत्तरमें यही कहना होगा कि बाह्यदृष्टिसे तो आपको अनेक कारण दृष्टीगोचर होंगें, पर अन्तर दृष्टिसे आपको एकही कारण ऐसा मिलेगा कि वह समाजको भस्म करनेवाला हो—वह है "कन्याविक्रय"। जिस कन्याविक्रय नाम मात्र लेनेसे जैनसमाज—बडा भारी अपमान या पाप और अधर्म समझती थी आज उसी दुष्ट कु-प्रथाको घर घरमें स्थान मिलचूका है इसी कलंकसे ओसवाल जैन समाज आज कलंकित हो रही है। आज ऐसे भी कलंकित हमारी समाजमें मौजूद है कि पुत्रीका जनमसे बडी खुशी मनाते हैं और समझते हैं कि एक किस्मकी लौटरी पैदा हुई है जैसे कि किसान लोग खेती पर आशा रखते हैं वैसेही वे अधम नर अपनी पुत्रीपर आशा रखते हैं। विक्रय करते समय पांच २ सात २ हजार रूपया लेना तो एक साधारण बात हो गई है यह नम्बर बीस—तीस हजार तक पहुँच चुका है अगर कन्याके वजन के साथ मिलान किया जाय तो बारह वर्ष की कन्यामें जादासे जादा एक मण वझन हो सकता है जबकी तीस हजारका वझन नौमण पंद्राह सैर का होता है अरे राक्षस मातापिताओ ? जरा सोचो अपनी पुत्रीका एक रुपयेभर मांस

का भाव क्या पडता है फिर भी आप कमाइयोसे उचपद रखनेका दावा रखते हैं ऐसा कसाई हमारी समाज में बिलकुल कम होगा पर एकके होनेपर भी समाज कलङ्कसे नही बच सक्ती। इस दुष्ट प्रथाने हमारा एकही नुकशान नही किया है पर अच्छे २ लिखे पढे सुयोग्य युवक धनके अभावसे तमाम उमर रडवे (कुवारे) रह जाते है जिससे समाजकी सख्या कम हो रही है और धनाढय लोग चाहे वृद्ध वय-वाला भी क्यो न हो पर एक दो तीन चार वार भी शादी कर लेते हैं बाद दो चार वर्षमे जब वह नव वधू पन्द्राह सोलाह वर्षमें होती है तब उसे विध्वापना दे वह वृद्ध पति मृत्यु के महमान बन बैठते हैं। दलाली करनेवाले और जान भात के माल मशाला उडानेवाले समाज भाइयों! जरा इस तर्फ भी ध्यान दीजिये। अब उस सोलह वर्षकी कन्याका मनरजन साठ वर्षका बुड्ढा कैसे कर सकेगा! फिरभी वह दूसरी औरतोंका हास्य विलास शृगार आदि देख कैसे ब्रह्मचर्यव्रत पालन कर सकेगी। जब पुरुष लोगों के पास औरतें होनेपर भी वे कई रडियों या परस्त्रियासे लम्पट बन जाते है उन कामान्धो को स्त्रीमे भी सतोष नही है तो युवान विधवा के हृदय में पतिका कितना दु ख होता होगा और वह अपने मातापिता और समाज के लोगों को कितनी दुराशीष देती होगी ? उस के घोर पापसे समाज भस्म हो उसमें आश्चर्य ही क्या है। देखिये एक तर्फ तो सुयोग्य युवकोंको औरतें न मिलनेसे उनका द्रव्य रंडिया खाती है और दूसरी तरफ बडे घरोंकी कितनीक विधवायें अपना धन अन्य जातिवालों को खिलाती है। इससे समाजमें धनकी कीतनी

हानि होती है और साथमें उन रंडवों और विधवाओं की मृत्यु होना इससे उनकी भी हानि होती है। अब आप जरा जैन संख्या की तर्फ भी ख्याल करिये। सन् १९२१ की मर्दुम शुमारीमें बारह लाख चौरासी हजार की कुल जैन संख्या मानी गई है जिसमें चारलाखसे ज्यादा रंडवे पुरुष और विधवा औरतें ही हैं अगर उन्हें आजही बाद कर दें तो कुल आठ लक्षके करीबन जैन कोम रहेगी। साथमें यह भी नही कह सक्ते कि दिन दिन अनंती हानि है कारण सन १८८१की मर्दुम शुमारीमें अट्ठावीस क्रोड हिन्द जनता थी उस समय वीस लक्ष जैनोंकी संख्या थी जब कि आज हिन्द जनता अट्ठावीस की निप्पन तेतीस क्रोड की है तो जैन वीस लक्षकी जगह बारह लक्ष ही रह गये इसका अनुमान यह हो सकता है कि ३० वर्षोंके अन्दर आठ लक्ष जैन संख्या कम हो गई तो बारह लाख के लिये ४५ वर्षका अरसा होता है हम यह कहना नही चाहते कि ४५ वर्षों में जैन संख्या समाप्त हो जायगी पर इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि यदि इसी तरह जैन समाज कुप्रथाओं का आदर करती रहेगी तो एक समय वह आवेगा कि इस आर्य भूमिपर जैनोंका नाम निशान रहना मुश्किल हो जायगा। जितनी हानि है वह सब कन्याविक्रयसे ही है साथमें 'बाललग्न तथा वृद्ध विवाह' भी हैं पर यह सब 'कन्याविक्रय' की शाखाये हैं कारण कन्याविक्रय बन्ध हो जाय तो 'मूलं नास्ति कुतः शाखा' मूलका नाश होनेपर शाखा तो स्वयं ही नष्ट हो जायगी।

इस दुष्ट प्रथाको रोकना कोई छोटीसी बात नही है कारण यह पापाचार एक घरमें नहीं एक ग्राममें नहीं एक देशमें नहीं किन्तु

प्राय सर्वव्यापी हो रहा है। वह लेख लिखनेसे व्याख्यान देनेसे या ट्रेक्ट छपानेसे दूर नहीं हो सकेगा। जैसा असाध्य रोग है वैसीही असाध्य दवाई होनी चाहिए।

हमें अधिक दु ख इस बातका है कि इस कुप्रथा निर्मूल करनेमें सामान्य आदमी तो पहीलेसे ही असमर्थ है और धनाढ्य श्रीमन्त लोक अपने मृतक पूर्वजो के ओसर मोसर में लाखों रूपैयो के खर-चने स्वर्ग के परवाने लिखानेमें या लग्न सादीया में लाखोंका खरचा कर अपनी कीर्तिको भूमण्डल मे अमर बनाने की कोशीस में लग रहे है उनको समाज की तनक भी दरकार नहीं है चाहे समाज मर क्यों न जाय।

अहो! समाज श्रीमन्तो! और धन विमूढात्माओ! आप अपने मनके मौतीचूर कीननेही क्यों न बनावे पर आज सुधरे हुवे जमानेके विद्वान लोग न तो आपको समजदार समझते है न आपकी कीर्त्ति करते है न आपको उदारवृत्तिवाले समझते है बल्के आपको नफरत की दृष्टिसे देखते है कारण एक तरफ तो आपकी समाज अनेक अत्या-चारोंमें कलंकित हो रही है जब दूसरी तरफ आप मोजमजा उडा रहे है क्या यह आपके लिये शरमकी बात नहीं है।

जब ही तो अन्य लोक पुकारे करते है कि जैनलोक छोटेछोटे जीवोंकी दयापालने मे और टीप-चन्दा करनेमें बडी ही उदारता बतलाते है और मनुष्यों की दयाके लिये जैन बडेही बेदरकारी रखते है जबही तो दिनप्रतिदिन जैनोंकी संख्या कम होती जा रही है।

पूज्य समाज अग्रेश्वर और दानवीरों ! अब आप कुंभकरण निद्राका त्यागकर उठो अपनी समाजको संभालो "कन्याविक्रय" दुष्ट पापाचारको निर्मूल करनेके लिये जल्दीसे प्रयत्न करों अगर इसपर भी आप प्रमाद कर बैठ जांवेंगें तो कंइ नास्तिकों के दीलमें पुनर्लग्न का प्रश्न होते है उनको अधिक अवकाश मीलेगा. कारण कंइ विधवाओं अन्यधर्मीयों के साथ भागनेका समाचार मीलना शरू हो गया है और अत्याचारसे समाज रसातल पहूंच रही है ।

अन्तमें मेरा नम्रता पूर्वक निवेदन है कि जैसे अन्य कार्योंके लिये फंड कीया जाता है वैसे एक इस कार्यके लिये विशाल फंड कीया जाया और ग्रामोग्राम इस फंडकी शाखाएं खोली जाय अगर कोइ जातिभाइ अपनी पुत्रीकी सादी करने में असमर्थ हो वह इन फंडसे करजा ले सादी कर दे पर पुत्रीका एक पैसा भी न ले. अगर कोइ शख्स एसा अनुचित कार्य करे वह न्याति जातिका जवाबदार ठरे अगर इस बातके लिये ग्रामोग्रामके न्याति अग्रेश्वर लोक पुरण परिश्रम करे तो आशा है कि कुच्छ अरसोंमें सुधार हो सके ।

कन्याओं के मातपिताओं को सोचना चाहिये कि इस अग्निके अंगारोंसे आपकी कैसे तृप्ति होगी ? परभवमें तो आपको निश्चय जवाब और बदला देना ही पडेगा. आप पंङ्गुले बन अपनी पुत्रिके मांसपर क्यों आधार रखते है ? कमाके खानेकी हिम्मत रखों. और जैसी अपनी हैसियत है इसी माफीक खरचा रखो तो क्या आप अपना उदर पोषण तक भी नहीं कर सक्ते कि पुत्रीके मांस वेचनेकी आपको

जरूरत पडे मैं तो आपको यह नेक सलाहा देता हूं कि इस अधर्म कार्य करनेकी निष्पत मजुरी कर पेट भरना अच्छा है अगर मजुरी न हो तो मागके खानाभी अच्छा है अगर मागखाना न बने तो अनशन कर मरजाना ही अच्छा है पर एसा अधर्म पापाचार कर समाजको कलकिन करना सर्वथा अनुचित हैं।

सज्जनों ! मेरे हृदयमें अत्यन्त दुःख पैदा हुवा तबमेने यह लेख उन महाशयोंके लिये लिखा है कि जिनोंने "कन्याविक्रय" का पापको अपने हृदयमें स्थान दीया है और जाति अग्रेश्वर उनके लिये कुच्छ भी विचार न कर जान व बागनमें मालमुशाला उडा रहे है अगर आपमें कुच्छ भी जीवन रहा हैं आपको जगसा भी जातिगोरव हो तो इस कुप्रथाका शीघ्र निर्मूल करे। अलम् इतना ही कह विश्राम लेता हू।

निवेदन नम्बर ३

प्यारे सज्जनो !

एक जैनोमे ही नहीं किन्तु आमदुनियासे यह बात छीपी हुइ नहीं है कि पूर्व जमाना में जैनमहार्षियो इस भूमण्डलपर विहार कर क्षत्रीयोंको, ब्राह्मणोंको और वैश्योंको प्रतिबोध दे दे कर जैनधर्म मे स्थापन कर जैन जातियों–ओसवाल, श्रीमाल, पोरवाल, श्रावगी, खंडेलवाल अग्रवाल इत्यादि स्थापन कर उनको एसा सहकारी

बना दीये थे कि इन्द्र भी डीगाना चाहे तो वह नहीं डिगते थे. उन आचार्योंकी संतान भी परम्परा से इन ज्ञातियों का रक्षण और वृद्धि करने में खुब ही प्रयत्न कीया था. इन बातोंको बडे बडे इतिहासवेत्ता एक ही अवाज से स्वीकार करते है तो दूसरे प्रमाणों की आवश्यक्ता ही क्या है ?

एक जमाना एसा भी गुजर चूका है कि मुशलमानों के राज में हजारों नहीं पर लाखों हिन्दु स्वधर्म से भ्रष्ट हो मुसलमान बन गये थे पर हम दावा के साथ कह सक्ते है कि जैनधर्मोपासक एक बच्चा भी मुसलमान नहीं बना था इसका कारण यह था कि जैनोंमें पेश्तर से ऐसे द्रढ संस्कार जमा हुवा था कि वह मांसमदिराकी तरफ बडे ही घृणाकी दृष्टिसे देखा करते थे इस वास्ते वह अनुचित वरता-वसे मरणा अच्छा समझते थे। साथमें जैनाचार्यों का उपदेश भी हर समय मीलता रहता था जिनमे संघशक्ति और न्याति जाति का बन्धारण भी एसे अत्याचारों को रोकणे में कटीवद्ध था एक कारण यह भी था की उस जमाना मे जैनमन्दिरोंकी सेवाभक्ति, उपासनाने लोगोंकी श्रद्धा मजबुत बना रखी थी वास्ते ही उन जमानामें जैन लोगोंकी श्रद्धा धर्मपर अटल थी .

आज भी हमारी समाज में हजारों की संख्या में जैन साधु साधवीयों उपदेश देनेवाले मोजुद है आज हमारी समाज में हजारो धनाढ्य दानवीर मौजुद है, आज हमारी समाजमें सेंकडो धर्मसंस्थाओ, सभाओ सेवामण्डलों मौजुद है, आज हमारी समाजमें खबरो देने-वाले अखवार मौजुद है, आज हमारी समाजमें पढने के लिये

लाखो कीनाये मोजुद है इतना साधन होनेपर भी समजमे नहीं आता है कि दिनप्रतिदिन हमारी समाज क्यों कमजोर होती जा रही है ? दिनप्रतिदिन धर्मश्रद्धा शिथिल क्यो हो रही है ? दिनप्रतिदिन वीतराग धर्मको पालन करनेवाली जैनसमाजमे फूट, कुसंप, कुप्रथाए क्यो बढती जा रही है, अगर कोइ प्रयत्न कर तीन हाथ जोडे तो तेरह हाथ तुट जाते है यह हमे तो बडा ही ताजुब होता है।

आज ईसाइ लोक हर वर्ष में लाखो हिन्दुओंको ईसाई बना रहे है, मुसलमान लोक हिन्दुओंको मुसलमान बना रहे हैं, आर्य-समाजी मुसलमानोंको हिन्दु बना रहे है इन आफीसोका काय बडे ही वेगके साथ चल रहा है।

इन कार्योंके लिये वह लोक तनमन और धन अर्पण करनेमे तनिक भी पीछे नहीं हटते है यानी अपनी समाजको बढानेकी पुरसर कौशीष कर रहे है यह बातें सुपनाकी नहीं किन्तु हम अपनी खुली नजरोंसे देख रहे है और प्रति दशवर्षोसे मर्दुम सुमारी इनकी गीवाना भी कर रही है।

इस हालत में हमारी समाजके नेताओ के लिये नया जैन बनाना तो दूर रहा पर जैनजातिका रक्षण करनेमेभी इतने कमजोर बन बैठ है न जाने सबके सब नेताओने वीतराग भाव धारण कर लिया या कोई आयुष्यके अन्तनरका मौनव्रत धारण कीया है यह बात समज म नहीं आती है।

अगर उन्चा देख लिये यह ख्याल कीया जाय कि हमारी समाजके धनाढ्य लोक तो जगतकी लक्ष्मी को अपनी दासी बना-

नेके प्रयत्नमें लगे होंगे और साधारण आदमि अपनी उदर पूर्णाकी कौशीसमें होगा पर जैन जाति बनानेवाले पूर्वाचार्यों कि संतान जो कि जिनोपर शासनका आधार है वह मुनिवर्ग कीसकार्य में लगे होंगे वह समजमें नहीं आता है ।

जिनधर्मके आपसके धर्मभेदोंके लिये आज श्वेताम्बर दिगम्बर स्थानकवासी और तेरहपन्थी लोक आपसमें लड रहे है वह कीसके आधार से ? कहनाही पडेगा कि अपने अपने उपासक यानि समाजके एकक भागके ही आधारसे लड रहे है जबकी इस लडायोंसे समाजही नष्ट हो जायगा फीर आपको आधार कीसका होगा ? इसपर जरा गहरी द्रष्टिसे ध्यान दिजिये । " मारवाडमें आजसे दोसो वर्ष पहिले जैनोकी बहुत अच्छी आबादी थी संख्याभी बहुतथी आपसमें संप ऐक्यता संघ शक्ति और जाति बन्धारण नियमित था तब कीसी प्रकारका अत्याचारको स्थान भी नही मीलता था. जबसे धर्मभेद हुवा तब आपसमें कुसंप-फूटने जन्म लीया. समाज अलग अलग भागोंमें विभक्त हुइ. न्याति जातिका गोरव मट्टी में मीला और आज इस दशामें आ पहुंची की गामडे श्मशानतूल्य शून्य पडे है. अब सोचीये कि दोनो पक्षवाले धर्मगुरु उन ग्रामोंमें कीसपर हकुमत चलावेगा ? अगर इस माफीक कुसंप रहेगा तो जो रहे हुवे गामडे हैं वह भी शुन्य हो जायगा फीर उपासरो या स्थानकों में बैठ आनंदसे माला फेरा करना ।

हम आपुसमें लडनेवालोंसे यह पुच्छना चाहते है कि पूर्वा-चार्य बनाये हुवे धर्मोपासकों के लिये तो आप आपुसमे टंटे फीसादें करते हो पर आपने अपने जीवनमें एकाद भी नया श्रावक बनाया है ?

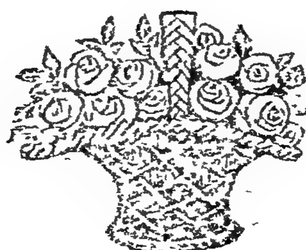
जब एक फरीकाका श्रावक दूसरे फरीकामें जानसे आपको इतना दुःख होता है कि आपसमे नोटीसबाजी कर रहे हो तब दूसरी और सद्यावन्ध श्रावक ग्रास जैनधर्मको छोड अन्यधर्मावलम्बी वन चुके है और बनते जारहे है उनके लिये आपको तनीकभी दुःख नहीं है सुननेपरभी 'कर्मकी गति' कहकर गुपचुप बेठ जाते हो क्या यह आपकी कमजोरी नहीं है। यह कहना पडेगा कि आपको धर्मपर प्रेम नहीं है किन्तु अपनी महिमाके गीतगाने वालोंको अपने कबजेमें रखनेका एक व्यसन है।

सुननेमें हृदय फट जाता है कलेजा कम्प उठता है लिखनेको हाथ धूजता है कि अभी थोडेही दिनोंमें अर्थात इसी सालमें केइ विधवा बहेनो अन्य धर्मीयोंके साथ चली गइ है केइ दुःखके मारे लडके मुसलमान बन गये है केइ आर्य समाजी बन गये हैं और एक ओसवालने तो अपनि विवाहित (परणीहुइ) औरतको अपने हाथोसे दूसरी बार परणाइ है यह सब बाते अखबारों द्वारा प्रसिद्धभी हो चुकी है क्या यह जैन जातिको शरमानेवाली बाते नहीं है ? क्या अबभी हमारे धर्मोपदेशको और जातिनेताओंकी कुम्भकरणी निद्रा दूर न होगी ? क्या आपके दीलमें जाति दुःख नही है ?

यहही दुःखके साथ लिखना पडता है कि आजकाल कीतनेही साधु साध्वीयों तो हमारे सिर फोडानेके लियेही घर छोडते है एसा कोइ ग्राम आपको स्थान ही मीलेगा कि जहापर धार्मीक झघडा न हों साधु तो एक मास या चार मास रह के झघडोंका बीज बोके चले जाते है एक दूसरेकी जडकाटनेमें अपनी न्यातिका गौरवनष्ट करो बैठत है हमारा यह ख्याल कदापि नहीं है कि सब साधु एसे होते है पर यह निश्चय

है कि एक साधु झगडा लगा जाता है फीर अच्छा साधु आनेपर भी वह हठीले लोक उनका उपदेश नहीं मानते है अर्थात अपने मिथ्या हठको नहीं छोडते है इसी कारणासे हमारी दुर्दशा हो रही है ।

अहो ! समाजनेताओं ! अब आप जागो ! पैरोंपर खडे हो अपनी समाजको संभालो. ओसर—मोसरोंका मिथ्या रीवाजको बन्धकर इसके बदलेमें स्वामिवात्सलकर अपने पूर्वजो को उज्ज्वल बनावो लग्न-सादियोंमे सादि पोषाकों करवाके अपनी जाति भाइयोंका निर्वाह करों । बचीत द्रव्यसे समाजमें पहला हुन्नरोद्योग के कारखाना खोलो के जिस्में आपके साधारणाभाइ और विधवा बहिनो अपना गुजारा सुखपूर्वक कर अपने धर्ममें स्थिर रहे और बालबच्चोंके लिये विद्यालयों खोलो उनमें व्यवहारिक और धार्मीक अच्छी तालीम देनेवाले जैन भाइयोंको अध्यापक रखों और ग्रामोग्राम परिभ्रमनकर सुलहसंपकी कमेटीयों स्थापनकर न्यातिजातिके शिथिल पडे बन्धारणोंको मजबूत बनावों धर्मसे पतित होते हुवे अपने भाइयोंको धर्ममें स्थिरिभूत करों इसमें ही आपकी नामवरी है इसमें ही आपकी यशः कीर्ति है इसमें ही आपका कल्याण है भविष्यमें ही आपका भला इसीकार्योंसे होगा इतना हीं कह में विश्राम लेता हूं । शान्ति ॥



॥ श्री ॥

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला ऑफीस फलोदीसे आजतक पुस्तकें प्रसिद्ध हुइ जिसका,

सूचिपत्र-

इस संस्थाका जन्म-पूज्यपाद परम योगीराज मुनिश्री रत्नविजयजी महाराज तथा मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराजके सदुपदेशसे हुआ है. संस्थाका खास उद्देश छोटे छोटे ट्रेक्ट द्वारा समाजमें ज्ञानप्रचार बढानेका है इस संस्था द्वारा ज्ञानप्रचार बढानेकों प्रथम सहायता फलोदी श्री संघकी तर्फसे मिली है, वास्ते यह संस्था फलोदी श्री संघका सहर्ष उपकार मानती है।

संख्या	पुस्तकोंके नाम	कीमत	संख्या	पुस्तकोंके नाम	कीमत
१	श्री प्रतिमा छत्तीसी	)०॥	१७	चौरासी आशातना	भेट
२	गयवर विलास	।)	+१८	डंकेपर चोट	भेट
३	दान छत्तीसी	)०॥	१९	आगमनिर्णय प्रथमांक	=)
४	अनुकम्पा छत्तीसी	)०॥	२०	चैत्यवन्दनादि	भेट
५	प्रश्नमाला प्रश्न १००	-)	२१	जिन स्तुति	भेट
६	स्तवन संग्रह भाग १ लो	=)	२२	सुबोध नियमावली	भेट
७	पैंतीस बोलोंका थोकडा	=)	२३	जैन दीक्षा प्रथमांक	भेट
८	दादा साहिबकी पूजा	=)	२४	प्रभु पूजा	भेट
+९	चर्चाकी पब्लिक नोटीस	भेट	+२५	व्याख्याविलास प्र० भा०	=)
१०	देवगुरु वन्दनमाला	-)	२६	शीघ्रबोध भाग १ ला	।)
११	स्तवन संग्रह भाग २ जो	=)	२७	शीघ्रबोध भाग २ जा	।)
१२	लिंगनिर्णय बहुत्तरी	-)	२८	शीघ्रबोध भाग ३ जा	।)
१३	स्तवन संग्रह भाग ३ जो	-)	२९	शीघ्रबोध भाग ४ थो	।)
१४	सिद्धप्रतिमा मुक्तावली	॥)	+३१	सुखविपाक सूत्र	।)
+१५	बत्तीस सूत्र दर्पण	≡)	३२	शीघ्रबोध भाग ६ ठा	=)
१६	जैन नियमावली	भेट	३३	दशवैकालिक मूल सूत्र	=)
			३०	शीघ्रबोध भाग ५ वा	।)

३४ शीघ्रबोध भाग ७ वां ८)
३५ मेझरनामो मु० कि० ।।।
३६ तीन निर्नामा लेखोंका उत्तर भेट
३७ ओसीयां ज्ञान लीस्ट भेट
३८ शीघ्रबोध भाग ८ वां ।)
३९ शीघ्रबोध भाग ९ वां ।)
४० नन्दीसूत्र मूलपाठ ८)
४१ तीर्थयात्रा स्तवन भेट
४२ शीघ्रबोध भाग १० वां भेट
४३ अमे साधु शामाटे थया भेट
४४ विनतिशतक भेट
४५ द्रव्यानुयोग प्र० प्रवेशिका ८)
४६ शीघ्रबोध भाग ११ वां ।)
४७ शीघ्रबोध भाग १२ वां ।)
४८ शीघ्रबोध भाग १३ वां ।)
४९ शीघ्रबोध भाग १४ वां ।)
५० +आनन्दघन चौवीसी भेट
५१ शीघ्रबोध भाग १५ वां ।)
५२ शीघ्रबोध भाग १६ वां ।)
५३ वर्णा बत्तीसी ज्ञानवि
५४ व्याख्याविलास भाग २ जा ,,
५५ व्याख्याविलास भाग ३ जा ,,
५६ व्याख्याविलास भाग ४ था ,,
५७ स्वाध्याय गहुंली संग्रह ,,
५८ रायदेवसि प्रतिक्रमण ,,

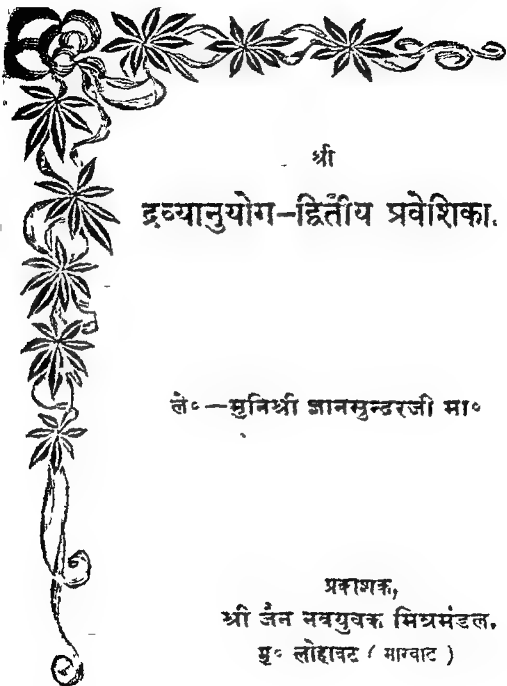
५९ शीघ्रबोध भाग १७ वां
६० शीघ्रबोध भाग १८ वां
६१ शीघ्रबोध भाग १९ वां
६२ शीघ्रबोध भाग २० वां
६३ शीघ्रबोध भाग २१ वां
६४ शीघ्रबोध भाग २२ वां
[illegible]
६५ उपकेश गच्छ लघु पट्टावली भेट
६६ [illegible]माला
६७ शीघ्रबोध भाग २३ वां ।)
६८ शीघ्रबोध भाग २४ वां ।)
६९ शीघ्रबोध भाग २५ वां ।)
७० तीन चातुर्मासका दिग्दर्शन भेट
७१ [illegible] प्रश्नोंका उत्तर ,,
७२ स्तवन संग्रह भाग ४ था ,,
७३ विवाहचूलिकाकी समालोचना ,,
७४ [illegible] ,,
७५ सुर सुन्दरी कथा ३)
७६ पंच प्रतिक्रमण विधि सहित भेट
७७ मुनि नाममाला भेट
७८ छ कर्मग्रन्थ सानुवाद
७९ दानवीर जगडूशाह
८० मुहूर्त
८१ चौपद [illegible]
८२ भाषण सं. भाग १ ला
८३ भाषण संग्रह भाग २ जा

नोटः—ज्ञानविलासमें उपरके २५ पुस्तकें है किंमत रु. ११

+ ऐसे चिन्हवाली पुस्तकें खलास हो चुकी है।

मिलनेका पत्ता—**श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला.**

मु० फलोदी [मारवाड].



श्री

द्रव्यानुयोग-द्वितीय प्रवेशिका.

ले०—मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी मा०

प्रकाशक,
श्री जैन नवयुवक मित्रमंडल.
मु० लोहावट (मारवाड़)

द्रव्य सहायक—

श्रीसुखसागर ज्ञानप्रचारक सभा.

श्री भगवतीजी सूत्रकि पूजाकि

आमदनीसे.

इन पुस्तकोंकी आमदनिसे और भी

ज्ञानप्रचार बडाया जावेगा ।

श्री सुखसागर ज्ञान प्रचार ज्ञानबिन्दु नं १।

अथ श्री

द्रव्यानुयोग द्वितीय प्रवेशिका

जिस्में

आठ कर्मोंकि १५८ उत्तर प्रकृति

तथा

पैंतालीस आगमोंकि सूची.



लेखक,

श्रीमदुपकेश (कमला) गच्छीय

मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज.



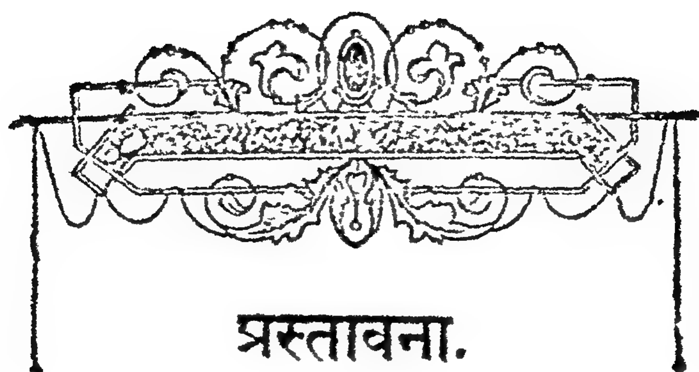
प्रकाशक,

श्री जैन नवयुवक मित्रमंडल.

मु० लोहावट (मारवाड)

प्रथमावृत्ति ५०००   विक्रम संवत १९८०

किंमत १०० नकलका रु १०



प्रस्तावना.



प्यारे सज्जनोः—

आज ग्रामोग्राम नगरोंनगरमें जहां देखा जावे वहां सभाओ मंडलो द्वारा वीर उत्साही नवयुवक जाति न्याति सामाजीक और धर्म सेवा कर अपने जन्मकों कृतार्थ बना रहे है. उनकों देख हमें भी भावना होती है कि हमारे मरुस्थल जेसे अपठित क्षेत्रोंके शोक मोज में जीवन गुजारनेवाले नवयुवकों को भी कभी वह तालीम मीलेगी ?" यादृशी भावनां कुर्यात्सिद्धिर्भवति तादृशी " हमारे भाग्योदयसे पूज्य मुनिश्री हरिसागरजी तथा श्रीमान् ज्ञानसुन्दरजी महाराजका शुभागमन होते ही हमारी भावना सफल हुइ। कहा है कि " जलमें वसे कुमुदिनी, चन्द्र वसे आकाश; जो जाउके मनवसे, तो ताउके पास " हम लोगोंकि वहुत कालसे अभिलाषाथी कि श्रीमान् ज्ञानसुन्दरजी

महाराज पधारे तों आपश्रीके मुखार्विंदसे श्री भगवतीजीसूत्र श्रवण कर हमारा जन्म पवित्र करे। आग्रहसे विनती होनेसे आपश्रीने हमारी अर्ज मजुर करी स १९७९ का चैत वद ६ को यहा के श्री सघने श्रीमद् भगवतीसूत्रका वडा महोत्सव किया जुलसाके साथ वरघोडा चढाया ज्ञानपूजामें १८ अठारा सूवर्ण मुद्रिका मीलाके रू. १०००) कि आमदनि हुइ वह द्रव्य ज्ञानपुस्तकों छपानेमें लगानेका ठराव हुवा इस सुअवसर पर श्री सुखसागर ज्ञानप्रचारक सभाकि स्थापना हुइ जिस्का खास उद्देश जैन शासनमें सुखरुपी समुद्र भरा है जिसे एकेक विन्दु द्वारा हमारे भाइयोको उन सुखोका अस्वादन करवा देना उनी सुखसागरका यह प्रथम विंदु है जिस्मे जड चैतन्यका सबन्ध तथा आठ कर्मोकी १५८ उत्तर प्रकतियोंका सुगमतासे विवरण वतलाया है और जैनोमें वर्तमान प्राय ४५ आगम माने जाते है जिस्मे क्या क्या विषय हैं उनोंकाभी सुगमतासे बोध होनेके लिये इस लघुपुस्तक में अच्छा प्रयत्न किया गया है वास्ते हम हमारे पाठकोंसे सविनय निवेदन करते है कि आप सज्जन इस लघु किताब को आद्योपान्त पढके हमारे उत्साहको वढावेगा तो हम इस सुखसमुद्रके विंदु आपकि सेवामे सदैव भेजते रहेंगा।

आपश्रीका सद् उपदेश वडाही असरकारी है इतनाही नही वल्कि हाल जमाने में जीस वातोंकि हमे खास जरुरत हैं उनी रहस्ते

कों आपश्री ठीक तोरसे वतला रहे है--प्राचीन इतिहास द्वारा हमारे जैनधर्मका हमारे पूर्वजोंका गौरव, हमारी संपति, हमारा प्रेम--ऐक्यता उदारता आदिका दिग्दर्शन कराते हुवे हमारेपर वडा भारी उपकार कर रहे है इनोंका फल यह हुवा कि यहांपर " श्री जैन नव युवक मित्र मंडल " कि स्थापना हुइ है जिनोंका खास उद्देश्य समाज सेवा और ज्ञानप्रचार वडानेका है साथमें हानिकारक पडीहुइ रुढीयोंकों तथा फजुल खरचावोंकों कम करना और अपने पूर्वजोंकी माफीक सादि चालों कि प्रवृति प्रयत्न उपदेश तथा भाषण करते हुवे तर्फ आकर्षित हो रहा है स्वल्पकाल में भी इस मित्र मंडलने वृद्ध सज्जनोंकी मदद से अच्छी सफलता प्राप्त करी है भविष्यके लिये उत्साह भी वडता जा रहा हैं हम शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि इस मित्रमंडलका दिन प्रतिदिन उत्साह वडता रहें ओर एसे महात्माओंका विहार मरुस्थल जेसे देशोंमें हमेशों होते रहें अन्य मुनिमहाराजोंसे भी हमारी नम्रता पुर्वक विनती है कि आप श्रीमान् मरुस्थल जेसे अपठित क्षेत्रमे विहारकर हमलोगों पर उपकार करे समज जाने से मारवाडी लोग काम कर वतलानेवाले है। शांतिः

भवदीय.

१९८० का मीती श्रावण शुद ९

छोगमल कोचर.
प्रेसिडन्ट श्री जैन नवयुवक मित्र मंडळ.
मु. लोहावट—मारवाड.

अथश्री

आठ कर्मों कि १५८ प्रकृति ।



जीवका स्वभाव चैतन्य और कर्मोका स्वभाव जड एव जीव और कर्मोका भिन्न भिन्न स्वभाव होने पर भी जैसे धूलमें धातु तीलोंमें तैल दूधमें घृत है, इसी माफीक अनादि कालसे जीव और कर्मो के संबन्ध है जैसे यंत्रादि के निमित्त कारणसे धूलसे धातु तीलोंसे तैल दूधसे घृत अलग हो जाते है इसी माफीक जीवों को ज्ञान दर्शन तप जप पूजा प्रभावनादि शुभ निमत्त मीलनेसे कर्मो और जीव अलग अलग हो जीव सिद्ध पदको प्राप्त कर लेते है.

जबतक जीवों के साथ कर्म लगे हुवे है तबतक जीव अपनि दशाको भुल मिथ्यात्वादि परगुण में परिभ्रमन करता है जैसे सुवर्ण आप निर्मल अकलंक कोमल गुणवाला है किन्तु अग्निका संयोग पाके अपना असली स्वरुप छोड उष्णता को धारण करता है फीर जल वायुका निमत्त मीलने पर अग्निका त्यागकर अपने असली गुणको धारण कर लेता है इसी माफीक जीव भी निर्मल अकलंक अमूर्त्ति है परन्तु

मिथ्यात्वादि अज्ञान के निमत्त कारणसे अनेक प्रकार के रूप धारण कर संसारमें परिभ्रमन करता है जब सद्ज्ञान दर्शनादि का निमित्त प्राप्त कर मिथ्यात्वादिका संग त्याग अपना असली स्वरूप धारण कर सिद्ध अवस्थाको प्राप्त कर लेता है.

जीव अपना स्वरूप कीस कारणसे भूल जाता है ? जैसे कोइ अकलमंद समजदार मनुष्य मदिरापान करनेसे अपना भान भुल जाता है फीर उन मदिरा का नशा उतरने पर पश्चाताप कर अच्छे कार्यमें प्रवृति करता है इसी माफीक अनंत ज्ञानदर्शनका नायक चैतन्यके मोहादि कर्मदलक विपाकोदय होता है तव चैतन्यको वैभान-विकल-वना देता है फीर उन कर्मों को भोगवके निर्जरा करने पर अगर नया कर्म न वन्धे तो चैतन्य कर्म मुक्त हो अपने स्वरूपमें रमणता करता हुवा सिद्ध पदको प्राप्त कर लेते है.

कर्म क्या वस्तु है ? कर्म एक कीस्मके पुद्गल है जिस पुद्गलोंमें पांच वर्ण दोगन्ध पांचरस च्यार स्पर्श है जीवोंके उन पुद्गलों से अनादि कालका संवन्ध लगा हुवा है उन कर्मोंकि प्रेरणासे जीवोके शुभाशुभ अध्यवसाय उत्पन्न होते है उन अध्यवसायोंकी आकर्षणासे जीव शुभाशुभ कर्म पुद्गलोंको ग्रहन करते है। वह पुद्गल आत्मा के प्रदेशोंपर चीटक जाते है अर्थात् आत्म प्रदेशों के साथ उन कर्म पुद्गलोंका खीरनिरकी माफीक वन्ध होते है जिनोंसे वह कर्म पुद्गल आत्माके गुणोंको झांखा वना देते है जैसे सूर्यको

बादल काला बनाता है। जैसे जैसे अध्यवसायोंकी मंदता तीव्रता होती है वैसे वैसे कर्मों के अन्दर रस तथा स्थिति पड जाति है वह कर्म बन्धने के बाद वह कर्म कीतने कालसे विपाक उदय होते हैं उसको अबादा काल कहते है जैसे हुन्डीके अन्दर मुदत डाली जाति है॥ कर्म दो प्रकारसे भोगवीये जाते हैं (१) प्रदेशोदय (२) विपाकोदय जिस्मे तप जप ज्ञान ध्यान पूजा प्रभावनादि करनेसे दीर्घ कालके भोगवने योग्य कर्मोको आकर्षण कर स्वल्प कालमें भोगव लेते है जिसकी खबर छद्मस्थोंको नही पडती हैं उसे प्रदेशोदय कहते हैं तथा कर्म विपाकोदय होनेसे जीवोंको अनेक प्रकारकी विटम्बना से भोगवना पडे उसे विपाकोदय कहते हैं।

अशुभ कर्मोदय भोगवते समय आर्तध्यानादि अशुभ क्रिया करने से उन अशुभ कर्मोंमें और भी अशुभ कर्म स्थिति तथा अनुभाग रसकि वृद्धि होती है तथा अशुभ कर्म भोगवते समय शुभ क्रिया ध्यान करनेसे वह अशुभ पुद्गल भी शुभपणे प्रणम जाते है तथा स्थितिघात रसघात कर बहुत कर्म प्रदेशोंसे भोगवके निर्जरा कर देते है॥ शुभ कर्मोदय भोगवते समय अशुभ क्रिया करनेसे वह शुभ कर्म पुद्गल अशुभपणे प्रणमते हैं और शुभ क्रिया करनेसे उन शुभ कर्मोंमें और भी शुभकि वृद्धि होती हैं वह शुभ कर्म सुखे सुखे भोगव के अन्तमें मोक्षपदको प्राप्त कर लेते हैं।

साहुकार अपने धनका रक्षण कर कर सकेंगे कि प्रथम

चौर आनेका कारण हेतु रहस्तेको ठीक तोरपर समजलेगें फीर उन चोर आनेके रहस्तेकों बन्ध करवादे या पेहरादार रखदे तो धनका रक्षण कर सके इसी माफीक शास्त्रकारोंने फरमाया है कि प्रथम चौर याने कर्मोंका स्वरूपकों ठीक तोरपर समजो फीर कर्म आनेका हेतु कारणको समजो फीर नया कर्म आनेके रहस्तेकों रोकों और पुरांणे कर्मोंको नाश करनेका उपाय करों तांके संसारका अन्त कर यह जीव अपने निज स्थान (मोक्ष) को प्राप्त कर सादि अनंत भाग सुखी हो।

कर्मोंकि विषय के अनेक ग्रन्थ है परन्तु साधारण मनुष्योंके लिये एक छोटीसी कीताब हो तो वह सुविधा के साथ लाभ उठा सके इस हेतुसे इस छोटीसी कीताब द्वारा मूल आठ कर्मोंकि उत्तरकर्म प्रकृति १५८ का संक्षिप्त विवरणकर आपकि सेवामें रखी जाति है आशा है कि आप इस कर्म प्रकृतियोंकों कंठस्थ कर आगे के लिये अपना उत्साह वढाते रहेगें इत्यलम्।

॥ मूल आठ कर्मोंकि उत्तर प्रकृति १५८ ॥

(१) ज्ञानावर्णियकर्म—चैतन्यके ज्ञान गुणकों रोक रखा है।
(२) दर्शनावर्णियकर्म—चैतन्यके दर्शन गुणकों रोक रखा है।
(३) वेदनियकर्म—चैतन्यके अव्यावाद गुणकों रोक रखा है।
(४) मोहनियकर्म—चैतन्यके क्षायक गुणकों रोक रखा है।
(५) आयुष्यकर्म—चैतन्यके अटल अवगाहाना गुणकों रोक रखा है।
(६) नामकर्म—चैतन्यके अमूर्त्ति गुणकों रोक रखा है।

(७) गौत्रकर्म—चैतन्यके अगुरु लघु गुणकों रोक रखा है।
(८) अन्तरायकर्म—चैतन्यके वीर्य गुणकों रोक रखा है।

इन आठों कर्मोंकि उत्तर प्रकृति १५८ है उनोंका विवरण—

(१) ज्ञानावर्णियकर्म जेसे घाणीका बहल-याने घाणीके बहलके नेत्रोंपर पाट्टा बान्ध देनेसे कीसी वस्तुका ज्ञान नही होता है. इसी माफीक जीवोंके ज्ञानावर्णिय कर्मपडल आजानेसे वस्तुतत्त्वका ज्ञान नहीं होता है। जीस ज्ञानावरणीय कर्मकि उत्तर प्रकृति पाच है यथा—(१) मतिज्ञानावर्णिय, ३४० प्रकारके मतिज्ञान है (देखो शीघ्रबोध भाग ६ ठा) उनके आवरण करना अर्थात् मतिसे कीसी प्रकारका ज्ञान नही होने देना अच्छी बुद्धि उत्पन्न नही होना तत्त्व वस्तुपर विचार नही करने देना. प्रज्ञा नही फेलना-बदलेमें खराब मति-बुद्धि-प्रज्ञा-विचार पैदा होना यह सब मतिज्ञानावर्णियकर्मका ही प्रभाव है (२) श्रुतिज्ञानावर्णिय श्रुतिज्ञानको रोके, पठन पाठन श्रवण करनेको रोके, सद्ज्ञान होने नही देवे योग्य मीलनेपर भी सूत्र सिद्धान्त वाचना सुननेमें अन्तराय होना-बदलेमें मिथ्याज्ञान पर श्रद्धा पठन पाठन श्रवण करनेकि रूची होना यह सब श्रुतिज्ञानावर्णियकर्मका प्रभाव है (३) अवधिज्ञानावर्णियकर्म अनेक प्रकारके अवधिज्ञानकों रोके (४) मनःपर्यवज्ञानावर्णियकर्म आते हुवे मनःपर्यवज्ञानको रोके (५) केवलज्ञानावर्णियकर्म संपूर्ण जो केवलज्ञान है उनकों आते हुवेकों रोके इति ॥

(२) दर्शनावर्णीयकर्म—राजाके पोलीया जैसे कीसी मनुष्यकों राजासे मीलना है परन्तु वह पोलीया मीलने नही देते है इसी माफिक जीवोंको धर्म राजा से मीलना है परन्तु दर्शनावर्णीयकर्म मीलने नही देते है जीसकि उत्तर प्रकृति नौ है. (१) चक्षु दर्शनावर्णीयकर्म प्रकृति उदय से जीवोंको नेत्र (आँखों) हिन बना दे अर्थात् एकेन्द्रिय वेइन्द्रिय तेइन्द्रिय जातिमें उत्पन्न होते है कि जहां नेत्रोंका बिलकुल अभाव हैं और चौरिन्द्रिय पांचेन्द्रिय जातिमें नैत्र होने पर भी रातीदा होना काना होना तथा बिलकुल नही दीखना इसे चक्षु दर्शनावर्णीयकर्म प्रकृति कहते है (२) अचक्षु दर्शनावर्णीयकर्म प्रकृति उदयसे त्वचा जीभ नाक कान और मनसे जो वस्तुका ज्ञान होता है उनोंको रोके जिस्का नाम अचक्षु दर्शनावर्णीय कहते है (३) अवधि दर्शनावर्णीयकर्म प्रकृति उदय अवधि दर्शन नही होने देवे अर्थात् अवधि दर्शनको रोके (४) केवल दर्शनावर्णीय कर्मोदय, केवल दर्शन होने नही देवे अर्थात् केवल दर्शनपर आवरण कर रोक रखे ॥ तथा पांच निंद्रा-निंद्रा दर्शनावर्णीयकर्म प्रकृति उदय से निंद्रा आति है परन्तु सुखे सोना सुखे जाग्रत होना उसे निंद्रा कहते है । और सुखे सोना दुःखपूर्वक जाग्रत होना उसे निंद्रानिंद्रा कहते हे । खडे खडेकों तथा बैठे बैठेकों निंद्रा आवे उसे प्रचला नामकि निंद्रा कहते है । चलते फीरतेकों निंद्रा आवे उसे प्रचला प्रचला नामकि निंद्रा कहते है । दिनकों या रात्रीमें चिंतवन

(विचारा हुवा) किया कार्य निंद्राके अन्दर कर लेते हो उस स्त्यानर्द्धि निद्रा कहते हैं एवं च्यार दर्शन और पाच निंद्रा मीलाने से नौ प्रकृति दर्शनावर्णियकर्मकि है।

(३) वेदनियकर्म—मधुलीप्त छुरी जैसे मधुका स्वाद मधुर है परन्तु छुरीकी धार तीक्षण भी होती है इसी माफीक जीवोंको शातावेदनि सुख देती है मधुवत् और असातावेदनि दुःख देती है छुरीवत् जीसाकि उत्तर प्रकृति दोय है सातावेद-निय, असातावेदनिय, जीवोंको शरीर–कुटुम्ब धन धान्य पुत्र कलित्रादि अनुकुल सामग्री तथा देवादि पौद्गलीक सुख प्राप्ति होना उसे सातावेदनियकर्म प्रकृतिका उदय कहते हैं और शरीरमें रोग निर्धनता पुत्र कलित्रादि प्रतिकुल तथा नरकादि के दुःखोंका अनुभव करना उसे असातावेदनियकर्म प्रकृतिकहते हैं।

(४) मोहनियकर्म मदिरापान कीया हुवा पुरुष बे-भान हो जाते है फीर उनको हिताहितका ख्याल नही रहते है इसी माफीक मोहनियकर्मोदयसे जीव अपना स्वरूप भूल जानेसे उसे हिताहितका ख्याल नही रहता है जिस्के दो भेद है दर्शनमोहनिय सम्यक्त्व गुणको रोके और चारित्रमोहनिय चारित्र गुणको रोके जीसाकि उत्तर प्रकृति अठावीस है जिस्का मूल भेद दोय है (१) दर्शनमोहनिय (२) चारित्र मोहनिय. जिस्मे दर्शनमोहनिय कर्माकि तीन प्रकृति है (१) मिथ्यात्व-मोहनिय (२) सम्यक्त्व मोहनिय (३) मिश्रमोहनिय— जेसे एक कोद्रव नामका अनाज होते है, जिस्को खानेमे नशा

आ जाता है उन नशाके मारे अपना स्वरूप भूल जाता है ।

(क) जिस कोद्रव नामके धांनकों छाली सहित खानेसे विलकुल ही बेमान हो जाते है इसी माफीक मिथ्यात्व मोहनिय कर्मोदय जीव अपने स्वरूपको भूलके परगुणमें रमणता करते है अर्थात् तत्त्व पदार्थोंकि विप्रीत श्रद्धनाकों मिथ्यात्व मोहनिय कहते है जिस्के आत्म प्रदेशोंपर मिथ्यात्वदलक होनेसे धर्मपर श्रद्धा प्रतित न करे अधर्मकि प्ररूपना करे इत्यादि ।

(ख) उस कोद्रव धानका अर्ध विशुद्ध अर्थात् कुछ छाली उतारके ठीक किया हो उनके खानेसे कभी सावचेती आति है इसी माफीक मिश्रमोहनीवाले जीवोंकों कुच्छ श्रद्धा कुच्छ अश्रद्धा मिश्रभाव रहते है उनोंको मिश्रमोहनि कहते है लेकीन वह है मिथ्यात्वमें परन्तु पहलो गुणस्थान छुट जानेसे भव्य है ।

(च) उस कोद्रव धानकों छाछादि सामग्रीसे धोके विशुद्ध बनाइ परन्तु उन कोद्रव धांनका मूल जातिस्वभाव नही जानेसे गलछाक बनी रहती है इसी माफीक क्षायक सम्यक्त्व आने नही देवे और सम्यक्त्वका विराधि होने नही देवे उसे सम्यक्त्व मोहनिय कहते है । दर्शनमोह. सम्यक्त्व घाति है ।

दुसरा जो चारित्र मोहानिय कर्म है उसका दो भेद है (१) कषाय चारित्र मोहनिय (२) नोकषाय चारित्र मोहनिय. जिसमें कषाय चारित्र मोहनिय कर्मके १६ भेद है। जिसमे एकेकके च्यार च्यार भेद भी हो सक्ते है जेसे अनंतानुवन्धी क्रोध अनंतानुवन्धी जेसा, अप्रत्याख्यानि जेसा, प्रत्याख्यानि जेसा और संज्वलन जेसा एवं १६ भेदोंका ६४ भेद भी होते है यहांपर १६ भेद ही लिखते है ।

अनतानुबन्धी क्रोध—पत्थरकि रेखा सादृश, मान वज्रके स्थभ सादृश, माया वांसाकी झड मादृश, लोभ करमजी रेस्मके रग सादृश घात करे तो सम्यक्त्वगुणकि स्थिति जावत् जीवकि, गति करें तों नरककि ॥ अप्रत्याख्यानि क्रोध तलावकि तड, मान दान्तकास्थंभ, माया मेंढाका शृंग, लोभ नगरका कीच, घात करे तों श्रावकके व्रतोकि स्थिति एक वर्षकि, गति तीर्यंच कि ॥ प्रत्याख्यानि क्रोध गाडाकी लीक, मानकाष्टका स्थंभ, माया चालता वेलकामूत्र, लोभ नेत्रोंके अञ्जन.घात करे तों सर्व व्रतकि, स्थिति करे तो च्यार मासकि, गति करें तों मनुष्यकी ॥ सज्वलनका क्रोध पाणीकी लीक, मानतृणका स्थंभ, मायावामकी छाल लोभ हलदिका रंग, घात करे तों वीतरागपणाकी, स्थिति क्रोधकी दो मास, मानकी एक माम मायाकी, पन्दरा दिन, लोभकी अन्तर मुहुर्त. गति करे तो देवताओंमें जावें. इन शोलह प्रकारकी कषायको कषाय मोहनिय कहते हैं

नौ नोकपायप्रकृति—हास्य—कुतूहल मस्करी करना। भय—डरना विस्मय होना। शोक—फीकर चिंता आर्तध्यान करना। जुगप्सा—ग्लानी लाना नफरत करना। रति—आरभादिकार्योंमें खुशी लाना। अरति—संयमादि कार्योंमे अरति करना। स्त्रिवेद—जिस प्रकृतिके उदय पुरुषोंकि अभिलापा करना। पुरुषवेद जिस प्रकृतिके उदय स्त्रियोंकि अभिलापा करना। नपुंसक वेद जिम प्रकृतिके उदय स्त्रि—पुरुष दोनोंकि अभिलाप करना॥ एवं २८ प्रकृति.

(५) आयुष्य कर्मकि च्यार प्रकृति है यथा—नरकायुष्य, तीर्यंचायुष्य, मनुष्यायुष्य, देवायुष्य । आयुष्यकर्म जेसे कारागृहकी मुदत हो इतने दिन रहना पडता है इसी माफीक जीस गतिका आयुष्य हो उसे भोगवना पडता है ।

(६) नामकर्म चित्रकार शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके चित्रोंका अवलोकन करता है इसी माफीक नामकर्मोदय जीवोंकों शुभाशुभ कार्यमें प्रेरणा करनेवाला नामकर्म है जीसकी एकसोतीन (१०३) प्रकृतियों है।

(क) गतिनामकर्मकि च्यार प्रकृतियों है नरकगति, तीर्यचगति, मनुष्यगति, देवगति । एक गतिसे दुसरी गतिमें गमनागमन करना उसे गतिनामकर्म कहते है ।

(ख) जातिनाम कर्म कि पांच प्रकृति है एकेन्द्रिय जाति, बेइन्द्रिय० तेइन्द्रिय० चोरिन्द्रिय० पांचेन्द्रिय जाति नाम।

(ग) शरीर नामकर्मकि पांच प्रकृति है औदारिक शरीर वैक्रय० आहारीक० तेजस० कारमण शरीर० । प्रतिदिन नाश—विनाश होनेवालोंकों शरीर कहते है ।

(घ) अंगोपांग नामकर्मकि तीन प्रकृति है. औदारिक शरीर अंग उपांग, वैक्रिय शरीर अंगोपांग, आहारीक शरीर अंगोपांग, शेष तेजस कारमण शरीरके अंगोपांग नही होते है

(ङ) बन्धन नामकर्मकी पंदरा प्रकृति है—शरीरपणे पौद्गल ग्रहन करते है फीर उनोंकों शरीरपणे बन्धन करते है यथा—औदारीक औदारीकका बन्धन, औदारीक तेजसका

बन्धन, औदारीक कारमाणका बन्धन, औदारीक तेजस कारमाणका बन्धन, वैक्रय वैक्रयका बन्धन, वैक्रय तेजसका बन्धन, बन्धन. वैक्रयकारमाणका बन्धन. वैक्रिय तेजस कारमणका बन्धन । आहारीक आहारीकका बन्धन आहारीक तेजमका बन्धन. आहारीक कारमणका बन्धन. आहारीक तेजस कारमणका बन्धन । तेजस तेजसका बन्धन. तेजस कारमाणका बन्धन कारमाण-कारमाणका बन्धन । एवं १५ ।

(च) सघातन नाम कर्म कि प्रकृति है जो पोद्गल शरीरपणे ग्रहन कीया है उनोंकों यथायोग्य अवयव पणे मजबुत बनाना । जेमे औदारीक मघातन, वैक्रयसंघातन आहारीक मघातन, तेजम संघातन, कारमाण संघातन ।

(छ) सहनन नामकर्मकि छे प्रकृति है. शरीरकि ताकत हाडकि मजबुतिकों महनन कहते है यथा वज्र ऋषभनाराच संहनन । वज्रका अर्थ है खीला. ऋषभका अर्थ है पाट्टा नाराचका अर्थ है दोनो तर्फ मर्कट याने कुंटीयाके आकार दोनो तर्फ हडी जुडी हुइ अर्थात् दोनो तर्फ हडीका मीलना उसके उपर एक हडीका पट्टा और इन तीनोंमें एक खीली हो उसे वज्रऋषभ नाराच संहनन कहते है ॥ नाराच संहनन-उपरवत् परन्तु बीचमें खीली न हो । नाराच संहनन-इस्में पट्टा नही है । अर्द्ध नाराच संहनन-एक तर्फ मर्कट बन्ध हो दुसरी तर्फ खीली हो । किलीका संहनन-दोनो तर्फ अंकुशाकि माफीक एक हडीमें दुसरी हडी फसी हुइ हो । छेवट्ट संहनन-आपस में हड्डीयों जुडी हुइ है ॥

(ज) संस्थाननामकर्मकि छ प्रकृतियों है—शरीरकी आकृतिकों संस्थान कहते है समचतुरस्र संस्थान–पालटीमार के (पद्मासन) बेठनेसे चोतर्फ बराबर हो याने दोनों जानुके बिचमें अन्तर है इतना ही दोनो स्कन्धोंके बिचमें। इतना ही एक तर्फके जानु और स्कन्धके अन्तर हो उसे समचतुरस्र संस्थान कहते है। निग्रोध परिमंडल संस्थान नाभीके उपरका भाग अच्छा सुन्दर हो और नाभीके निचेका भाग हिन हो। सादि संस्थान–नाभीके निचेका विभाग सुन्दर हो, नाभीके उपरका भाग खराब हो। कुब्ज संस्थान–हाथ पैर शिर गर्दन अवयव अच्छा हो परन्तु छाती पेट पीठ खराब हो। वामन संस्थान–हाथ पैरादि छोटे छोटे अवयव खराब हो। हुंडक संस्थान–सर्व शरीर अवयव खराब अप्रमाणीक हो।

(झ) वर्णनामकर्मकि पांच प्रकृति है—शरीरके जो पुद्‌गल लागा है उन पुद्‌गलोंका वर्ण जैसे कृष्णवर्ण, निलवर्ण, रक्तवर्ण, पेतवर्ण, श्वेतवर्ण जीवोंके जिस वर्ण नाम कर्मोदय होते है वैसा वर्ण मीलता है।

(ञ) गन्ध नामकर्मकि दो प्रकृति है—सुभिगन्ध-नाम कर्मोदयसे सुभिगन्धके पुद्‌गल मीलते है दुभिगन्धनाम कर्मोदयसे दुभिगन्धके पुद्‌गल मीलते है।

(ट) रस नामकर्मकि पांच प्रकृति है—पूर्ववत् शरीरके पुद्‌गल तिक्तरस, कटुकरस, कषायरस, अम्लरस, मधुर रस, जैसे रस कर्मोदय होता है वेसे ही पुद्‌गल शरीरपणे ग्रहन करते है।

(ठ) स्पर्श नामकर्मकि आठ प्रकृति है जिस स्पर्श कर्मका उदय होता है वेसे स्पर्शके पुद्गलोंकों ग्रहन करते है जैसे कर्कश, मृदुल, गुरु, लघु, शित, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष।

(ड) अनुपूर्वि नामकर्मकि च्यार प्रकृतियों है—एक गतिसे मरके जीव दुसरी गतिमें जाता हुवा विग्रह गति करते समयानुपूर्वि, प्रकृति उदय हो जीवकों उत्पत्तिस्थान पर ले जाती है जेसे वेचा हुवा वहलकों धणी नाथ गालके लेजावे जीस्का च्यार भेद नरकानुपूर्वि, तीर्यंचानुपूर्वि, मनुष्यानुपूर्वि, देवआनुपूर्वि।

(ढ) विहायगति नामकर्मकि दोप्रकृतियों है जिस कर्मोदयसे अच्छी गजगामिनी गति होती है उसे शुभ विहायगति कहते है और जिन कर्मोदयसे खरवत् खराब गति होती है उसे अशुभ विहायगति कहते है। इन चौदा प्रकारकि प्रकृतियोंके पिंड प्रकृति कही जाती है अन प्रत्येक प्रकृति कहते है।

पराघातनाम—जिस प्रकृतिके उदयसे कमजोरकों तो क्या परन्तु बडे बडे सत्ववाले योद्धोको भी एक छीनकमें पराजय कर देते है।

उश्वासनाम—शरीरकि बाहारकि हवाकों नासीकाद्वारा शरीरके अन्दर खींचना उसे श्वास कहते है और शरीरके अन्दरकी हवाकों बाहार छोडना उसे उश्वास कहते है।

आतपनाम—इस प्रकृतिके उदयसे स्वय उष्ण न होनेपर भी दुसरोंको आतप मालुम होते है यह प्रकृति 'सूर्य' के वैमानके जो बादर पृथ्वीकाय है उनोंके शरीरके पुद्गल है वह

प्रकाश करता है, यद्यपि अग्निकायके शरीर भी उष्ण है परन्तु वह आतप नाम नहीं किन्तु उष्ण स्पर्श नामका उदय है।

उद्योतनाम—इस प्रकृतिके उदयसे उष्णतारहीत-शीतल प्रकृति जेसे चन्द्र गृह नक्षत्र तारोंके वैमानके पृथ्वी शरीर है तथा देव और मुनि वैक्रिय करते है तब उनोंका शितल शरीर भी प्रकाश करता है। आगीया-मणि-औषधियों इत्यादिके भी उद्योत नामकर्मका उदय होते है।

अगुरुलघुनाम—जीस जीवोंके शरीर न भारी हो कि अपनेसे संभाला न जाय, न हलका हो कि हवामें उड जावे याने परिमाण संयुक्त हो शीघ्रता से हलन चलनादि हरेक कार्य कर सके उसे अगुरुलघु नाम कहते है।

जिननाम—जिस प्रकृतिके उदय से जीव तीर्थकर पद को प्राप्त कर केवलज्ञान केवलदर्शनादि ऐश्वर्य संयुक्त हो अनेक भव्यात्माओंका कल्याण करे।

निर्माणनाम—जिस प्रकृतिके उदय जीवोंके शरीरके अंगोपांग अपने अपने स्थानपर व्यवस्थित होते हो जेसे सुतार चित्रगार, पुतलीयोंके अंगोपांग यथा स्थान लगाते है इसी माफीक यह कर्म प्रकृति भी जीवोंके अवयव यथास्थान पर व्यवस्थित बना देती है।

उपघातनाम—जिस प्रकृतिके उदय जीवों को अपने ही अवयव से तकलीफों उठानी पडे जेसे मस नह्रूर दो जीभों अधिक दान्त होठो से बाहार निकल जाना अंगुलीयों अधिक

इत्यादि । इन आठ प्रकृतियोंको प्रत्येक प्रकृति कहते है अब त्रसादि दश प्रकृति कहते है ।

त्रसनाम—जिस प्रकृतिके उदय त्रसपणा याने बेइन्द्रियादिपणा मीले उसे त्रसनाम कहते है ।

बादर नाम—जिस प्रकृति के उदय बादरपणा याने जिसको छद्मस्थ अपने चरमचक्षूसे देख सके यद्यपि बादर पृथ्वीकायादि एकेक जीव के शरीर दृष्टिगोचर नहीं होते है. तद्यपि उनोंके बादर नाम कर्मोदय होनेसे असंख्याते जीवोंके शरीर एकत्र होनेसे दृष्टिगोचर होसक्ते है परन्तु सूक्ष्म नाम कर्मोदयवाले असंख्यात शरीर एकत्र होनेपर भी चरमचक्षुवालों के दृष्टिगोचर नहीं होते है

पर्याप्त नाम—जिस जातिमें जितनि पर्याप्ती पाती हो उनोंको पूरण करे उसे पर्याप्तनाम कहते है पुद्गल ग्रहन करनेकि शक्ति पुद्गलोंको परिणमानेकि शक्तिकों पर्याप्ति कहते है ।

प्रत्येक शरीर नाम—एक शरीरका एक ही स्वामि हो अर्थात् एकेक शरीरमें एकेक जीव हो उसे प्रत्येक नाम कहते है। साधारण वनस्पति के सिवाय सब जीवोंके प्रत्येक शरीर है

स्थिर नाम—शरीर के दान्त हडी ग्रीवा आदि अवयव स्थिर मजबुत हो उसे स्थिर नाम कर्म कहते है

शुभनाम—नाभी के उपरका शरीरको शुभ कहते है

जेसे हस्तादिका स्पर्श होनेसे अप्रीति नही हे किन्तु पैरोंका स्पर्श होते ही नाराजी आति है ।

सुभाग नाम—कीसीपर भी उपकार कियां विगर ही लोगोंके प्रीतीपात्र होना उसको सुभागनाम कर्म कहते हैं । अथवा सौभाग्यपणा सदैव बना रहना युगल मनुष्यवत्

सुस्वर नाम—मधुरस्वर लोगोंको प्रीयहो पंचमस्वरवत्

आदेय नाम—जिनोंका वचन सर्व मान्य हो आदर सत्कारसे माने ।

यशःकीर्त्ति नाम—एक देशमें प्रशंसा हो उसे कीर्ति कहते है और वहुत देशोंमें तारीफ हो उसे यशः कहते है अथवा दान तप शील पूजा प्रभावनादिसे जो तारीफ होती है उसे कीर्ति कहते है और शत्रुवोंपर विजय करनेसे यशः होता है । अब स्थावरकि दश प्रकृति कहते है ।

स्थावर नाम—जिस प्रकृति के उदय स्थिर रहे याने शरदी गरमीसे वच नहीसके उसे स्थावर कहते है जैसे पृथ्व्यादि पांच स्थावरपणे में उत्पन्न होना ।

सूक्ष्म नाम—जिस प्रकृति के उदय सूक्ष्म शरीर—जो कि छद्मस्थोंके दृष्टिगोचर होवे नहीं कीसीके रोकनेपर रूकावट होवे नही. खुदके रोका हुवा पदार्थ रूक नहीसके । वैसे सूक्ष्म पृथ्व्यादि पांच स्थावरपणेमे उत्पन्न होना ।

अपर्याप्ता नाम—जिस जातिमें जितनि पर्याय पावे उनोंसे कम पर्यायबान्धके मर जावे, अथवा पुद्गल ग्रहनमें असमर्थ हो ।

साधारण नाम—अनंत जीव एक शरीरके स्वामि हो अर्थात् एक ही शरीरमें अनत जीव रहते हो. कन्दमूलादि.

अस्थिर नाम—दान्त हाड कान जीभग्रीवादि शरीरके अवयवों अस्थिर हो–चपल हो उसे अस्थिर नामकर्म कहते है।

अशुभनाम—नाभीके नीचेका शरीर पग विगेरे जोकि दुसरोंके स्पर्श करतेही नाराजी आवे तथा अच्छा कार्य करनेपर भी नाराजी करे इत्यादि।

दुर्भागनाम—कीसीके पर उपकार करनेपरभी अप्रीय लगे तथा इष्टवस्तुओंका वियोग होना।

दुःस्वरनाम—जिस प्रकृतिके उदयसे ऊंट, गर्दभ जेसा खराब स्वर होते है उसे दुःस्वरनाम कहते है।

अनादेयनाम—जिसका वचन कोइभी न माने याने आदर करनेयोग्य वचन होनेपर भी कोई आदर न करे।

अयशःकीर्तिनाम–जिस कर्मोदयसे दुनियोंमें अपयश अकीर्ति फैले, याने अच्छे कार्य करनेपरभी दुनियों उनोंकों भलाइ न देके बुराइयोंही करती रहै इति नामकर्मकी १०३ प्रकृति है।

(७) गोत्रकर्म–कुंभकार जेसे घट बनाते है उस्मे उच पदार्थ घृतादि और निच पदार्थ मदीरा भी भरे जाते है इसी माफीक

जीव अष्ट मदादि करनेसे निच गोत्र तथा अमदसे उच्च गोत्रादि प्राप्त करते है जीसकि दो प्रकृति है उच्चगोत्र, निच्चगोत्र–जिस्में इत्त्वाकुवंस हरिवंस चन्द्रवंसादि जिस कुलके अन्दर धर्म और नीतिका रक्षण कर चीरकालसे प्रसिद्धि प्राप्ति करी हों उच्चकार्य कर्त्तव्य करनेवालोंकों उच्च गोत्र कहते है और इन्होंसे विप्रीत हो उसे निच्चगोत्र कहते है ।

(८) अन्तरायकर्म जैसे राजाका खजांनची–अगर राजा हुकमभी कर दीया हो तों भी वह खजांनची इनाम देनेमें विलम्ब करसक्ता है इसी माफीक अन्तराय कर्मोदय दानादि कर नही सक्के है तथा वीर्य–पुरुषार्थ कर नही सके जीसकि पांच प्रकृति हे (१) दानअंतराय–जेसे देनेकि वस्तुवों मौजुद हो. दान लेनेवाला उत्तम गुणवान पात्र मौजुद हो. दानके फलोंकों जानता हो. परन्तु दान देनेमें उत्साह न वढे वह दानांतराय कर्मका उदय है.

दातार उदार हो दानकी चीजो मौजुद हो आप याचना करनेमें कुशल हो परन्तु लाभ न हो तथा अनेक प्रकारके व्यापारादिमें प्रयत्न करनेपरभी लाभ न हो उसे लाभान्तराय कहते है ।

भोगवने योग्य पदार्थ मौजुद है उस पदार्थोंसे वैराग्य भावभी नही है न नफरत आति है परन्तु भोगान्तराय कर्मोंदयसे कीसी न कीसी कारणसे भोगव नहीं सके उसे भोगान्तराय कहते है जो वस्तु एक दफे भोगमें आति हो असानादि ।

उपभोगान्तराय–जो स्त्रि वस्त्र भूषणादि वारवार भोगनेमें आवे एसी सामग्री मौजुद हो तथा त्यागवृत्ति भी नहो तथापि उपभोगमें नहीं ली जावे उसे उपभोगान्तराय कहते है।

वीर्यान्तराय–रोग रहीत शरीर वलवान सामर्थ्य होनेपरभी कुच्छभी कार्य न कर सके अर्थात् वीर्य अन्तराय कर्मोदयसे पुरुपार्थ करनेमें वीर्य–फोरनेमें कायरोंकी माफीक उत्साहा रहित होतें है उठना वेठना हलना चलना वोलना लिखना पढना आदि कार्य करनेमें असमर्थ्य हो वह पुरुपार्थ करनही सकते है उसे वीर्य अन्तरायकर्म कहते हैं इन आठों कर्मोंकी १५८ प्रकृतिको कंठस्थ कर फीर दुसरे अंकमे कर्मवन्धनेका तथा कर्म तोडनेके हेतु लिखेगे उसपर ध्यान दे कर्मवन्धके कारणोंको छोडनेका प्रयत्न कर पुरांणे कर्मोंको क्षय कर मोक्षपद प्राप्त करना चाहिये इति

सेवंभंते सेवंभंते तमेवसच्चम्



४५ आगमों का संक्षिप्त विवरण.



इग्यारा अंगसूत्रों कि सूची.

(१) श्री आचारांगजी सूत्र श्रुत स्कन्ध २ अध्ययन २५ उदेशा ८५ जिस्मे मुनियों का आचार विचार विनय व्यावच्च भाषा एषणा वस्त्रपात्र मकानादि ग्रहन तथा छेकाया जीवों कि प्ररूपणा और भगवान् वीर प्रभुका उज्वल जीवन है.

(२) श्री सूयगडायांगजी सूत्र श्रुत० २ अध्य० २३ उदेशा ३३ जिस्में स्वमत परमत कि प्ररूपणा मोक्षमार्ग उत्कृष्ट मुनिमार्ग, स्त्रिसंसर्गत्याग, नरकदुःख, वीरप्रभुकि स्तुति च्यार समौसरण इत्यादि विस्तार है।

(३) श्री ठांणायांगजी सूत्र ठाणा १० उद्देशा २१ एक बोलसे दश बोलोंका संग्रह है जिस्मे च्यारों अनुयोगके अन्दर नय निक्षेप गर्भीत विविध विषयकी २२०० चोभंगीयोंका निरूपण है.

(४) श्री समवायांगजी सूत्र–जिसमें एक बोलसे कोडाकोड बोलोंका संग्रह है इसमें भी नय निक्षेप अपेक्षा स्याद्वाद–अनेकान्त मतका प्रदर्शन और तीर्थंकर चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव भूत भविष्य तथा उनोंके मातापिता दीक्षातिथी आदि विविध विषयका अच्छा खुलासा है।

(५) श्री भगवतीजी सूत्र मूल शतक ४१ अंतर

शतक १३८ वर्ग १६ उद्देशा १६२५ जिस्मे गुरु गौतमस्वामींके पुच्छे हुवे ३६००० प्रश्नोंका उत्तर तथा अन्य महात्माओंके या अन्य तीर्थीयोंके प्रश्नोंका वडाही असरकारी उत्तर अर्थात् च्यारों अनुयोगोंका एक वडाभारी खजाना है ।

(६) श्री ज्ञाताधर्म कथा सूत्र श्रुत० २ अध्ययन १६ तथा २०६ जिस्मे पहले श्रुतस्कधमें मेघकुमारादि १६ न्यायके दृष्टान्त दे के उनोंकि उपनय मुनियोंपर उत्तारके साधु साध्वीयोंकों हितशिक्षा दी गइ है दुसरे स्कन्धमें पार्श्वनाथ प्रभुके शासन कि २०६ साध्वियोंका शीथिलाचार–सरल स्वभाव–एकावतारी होना या द्रोपदि महासतीकि १७ प्रकारकि पूजा वतलाइ है ।

(७) श्री उपाशक दशांग सूत्र अध्ययन १० जिस्मे आनन्दादि दश श्रावकों कि ऋद्धि व्रत ग्रहन शासन सेवा चैत्योपासना परिसह सहन प्रतिमा प्रतिपालन स्वर्गगमन एकावतारीपणा वतलाया है.

(८) श्री अंतगढ दशागसूत्र वर्ग ८ अध्य० ६० जिस्में गौतमकुँमारादि दीक्षा ग्रहन कर घोर तपश्चर्या कर अन्त समय श्री शत्रुंजय वेभारगिरि आदि तीर्थोंपर अनसन कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गये उनोंके उज्वल चरित्र है एमन्ताकुँमर अर्जुनमाली देवकीमाताके छे पुत्र श्रीकृष्ण तथा उनोंकी आठ अग्रमहिषीयों द्वारकादहन श्रीकृष्ण भविष्यमें तीर्थंकर होगा इत्यादि रसीक संबन्ध है.

(९) श्री अनुत्तरोववाइ सूत्र–वर्ग ३ अध्य० ३३

जिस्मे ३३ मुनियोंकी दीक्षा उग्र तपश्चर्या जिस्में भी धन्नामुनि कि तपश्चर्या और उनोंके शरीरका विशेष वर्णन वडाही अश्चार्यकारी है सर्व अनुतर वैमानोंके सुखोंका अनुभव कर मनुष्य हो मोक्ष जावेगे.

(१०) श्री प्रश्नव्याकरण सूत्र श्रु० २ अध्य० १० जिस्में पांच आश्रव द्वारमें जीव हिंस्या करना, झूठ बोलना, चौरी करना, मैथुन सेवना, परिग्रह कि ममत्त्व वढाना इसका फल नरकमें जाना अनेक जन्म मरणादि संसारमें परिभ्रमन करना और अहिंसा सत्य अदत्त ब्रह्मचर्य अममत्त्व वह पांच संवरद्वारके फल यावत् मोक्ष—व्याकरणादि पढके सूत्र वाचना ब्रह्मचर्य कि ३२ ओपमा इत्यादि ।

(११) श्री विपाकसूत्र—श्रुतस्कन्धं २ अध्य० २० जिस्मे मृगादि दश० जीवोंके पूर्वभवोंके दुष्कर्म—पापाचरणों के फल दुःखोंका अनुभव और सुबाहुकुँमरादि दश जीवोंकें पूर्व भवोंमें पुण्याचरणा दांनमहात्म्यका सविस्तार वर्णन है इन सूत्र के श्रवण करनेसे संसार दशाका ठीक अनुभव हो सकता है ।

बारहा उपांग सूत्रोंकि सूची.

(१) श्री उववाइजी सूत्र—जिस्में चम्पानगरी के वर्णनमें वडे वडे आकारवाले सिखरवन्ध जिनमान्दिरों से सुशोभित—नगरी है तथा पूर्णभद्रोद्यान पूर्णभद्र यक्षका मन्दिर आशोकवृक्ष पृथ्वी

शीलापट राजा-राजनिती प्रधान श्याम भेद दंड अर्थोपार्जन विद्या-राणी महिलावों कि कला, तीर्थंकर वर्णन तीर्थंकरोंका अतिशय प्रतिहार समौसरण मुनि आगमन मुनिगुण प्रभु देशना-इन्द्रादि बारह परिषदाका वर्णन प्रभु देशनाका सत्कार मत्तमत्तान्तर के २२ प्रश्न- अम्बड श्रावकाधिकार इत्यादि यह सूत्र वर्णनिक है.

(२) श्री रायपसेनीजी सूत्र-जिसमें अधर्म कि ध्वजा प्रदे-शीराजा तथा सूरीकान्तराणी, चितप्रधान. श्री केशीश्रमणाचार्य का उपदेशमे प्रदेशी राजाका कल्याण. याने सुरिया देव होना श्री जिनप्रतिमा कि १७ प्रकारसे पूजाका करना पूजा मोक्ष फल कि दाता है देवतावोंके वैमानका सविस्तर वर्णन ३२ प्रकारका नाटकसे प्रभुभक्ति इत्यादि.

(३) श्री जीवाभिगमजी सूत्र प्रवृति ६ जिस्में जीवादि पदार्थ-उर्ध्वअधो तीर्यग्लोक का वर्णन असख्यात द्विपसमुद्र का वर्णन सूक्ष्म बादरनिगोद का वर्णन. विजयदेव प्रतिमापूजा तथा राजधानि इत्यादि.

(४) श्री पन्नवणाजी सूत्र पद ३६ जिस्में. जीवाजीवके स्थान, अल्पाबहुत्व, स्थिति, पर्यव, उत्पात, चवन, श्वासोश्वास, संज्ञा, योनि, चर्माचर्म, भाषा, शरीर, प्राणणाम, कषाय, इन्द्रिय, योग. लेश्या, दृष्टि, कायस्थिति, अन्तक्रिया, शरीरावगाहान, क्रिया, कर्म, आहार, उपयोग, संज्ञी, संयति, वेदना, प्रचा-रणा, समुद्घात, इत्यादि द्रव्यानुयोगका खजाना है.

(५) श्री जम्बुद्विप पन्नति सूत्र–जिसमे तीर्थंकर चक्रवर्त, छे आरा, जम्बुद्विपमें भरतादि क्षेत्र, चुलहेमवन्तादि पर्वत गंगादि नदी, डुक विजय तीर्थ श्रेणि आदि दश द्वारोंसे जम्बुद्विपका वर्णन है और ज्योतीपीयोंका संक्षेपसे वर्णन है ।

(६) श्री चन्द्रपन्नति सूत्र पाहुड़ा २० जिसमे चन्द्र सूर्य गृह नक्षत्र तारोंका वर्णन है ज्योतिपीयों के मंडला चाली कुला उपकुला नक्षत्र नक्षत्रों के तारा–संस्थान नक्षत्रों के देव अलग अलग नक्षत्रोंका भोजन कार्यकि सिद्धि इत्यादि.

(७) श्री सूर्यपन्नति सूत्र पाहुडा २० जिसमे सूर्य, सूर्य के मंडले चाली नक्षत्र गृह–शुभाशुभ नक्षत्रों के देवता उनों के भोजन जिनोंसे कार्य की सिद्धि अर्थात् अमुक नक्षत्र के दिन अमुक ध्यान करनेसे अमुक कार्य कि सिद्धि होती है इसकी विधिका वर्णन है। ज्योतिपीयों का वर्णन सविस्तार है।

(८) श्री निरियावलिका सूत्र अध्य० १० जिसमें श्रेणिक राजा के काली आदि दश कुँमरों के अन्तरगत कोणक राजा वहल कुँमर के हार हाथी का विवादमें चेटक राजा और कोणक राजा का वडा भारी संग्राम का वर्णन है.

(९) श्री कप्पवडंसिया सूत्र अध्य १० जिस्मे कालिआदि दश भाइयों के पद्मादि दश पुत्रोंने दीक्षा ग्रहन कर स्वर्गगमन कियों का वर्णन है.

(१०) श्री पुष्फयाजी सूत्र अध्य० १० जिस्मे चन्द्र सूर्य्य शुक्रादि दश देव देवी भगवानकों वन्दन करनेको आये ३२ प्रकारका नाटक किया सोमल ब्रह्मणके प्रश्नादि जिनोंके पूर्व भवका वर्णन एकावतारी यावत् मोक्षमें जावेंगे ।

(११) श्री पुष्फचूलिया सूत्र अध्य० १० जिस्मे श्रीदेवी आदि १० देवीयों भगवानकों वन्दन करनेकों आइ ३२ प्रकारका नाटक भक्ति करी जिनोंका पूर्व भवका वर्णन है ।

(१२) श्री विन्हीदशा सूत्र अध्य० १२ जिस्में द्वारामति नगरी श्रीकृष्ण नरेश—बलदेवराजा—धारणी राणीके निषेढादि १२ राजकुमरोंकी दीक्षा वर्णन है.

दश पयन्ना सूत्रों कि सूची.

(१) चउसरण पयन्ना (२) सथार पयन्ना (३) भत्त पयन्ना (४) आउरपचखाण पयन्ना (५) महापचखाण पयन्ना इन पांचों पयन्ना सूत्रोंमें आलोचना व्रतविशुद्धि भात्तपाणीका त्याग अन्त समय प्रत्याख्यान भावनाविशुद्धि, कषाय शीतलता आत्मभावना अनित्यभावना असरणभावना आराधिकभावना एकत्वापणा कि भावना इत्यादि वर्णन है.

(६) ज्योतिष करांड पयन्ना (७) गणी विभिय पयन्ना इन दोय पयन्नोंमे ज्योतिषीयोंकि विषयका सविस्तार वर्णन है ।

(८) देवींन्द्र पयन्नामें च्यार जातिके देवतावोंका संक्षेपमें अच्छा बोधकारी वर्णन कर बतलाया है ।

(९) तंदुल वीयालीक पयन्नामें सो वर्षके आयुष्यवालों कि दश दशाका वर्णन है इस अनित्य शरीरमें नाडी कोटे नसों पैसी गर्भ स्थिति आदि डॉक्टरी विषय है.

(१०) गच्छाचार पयन्नामें गच्छ संबन्धी अच्छे अच्छे प्रबंध है साध्वीयोंका परिचय निषेध अगर साध्वीयों वन्दना करे तों मुनियोंसे १३ हाथ दुरोंसे करे साध्वीयोंका लाया हुवा आहारपाणी वस्त्रपात्र उपकरण साधुवोंके काम नहि आवे गच्छवासी साधु साध्वीयोंकों वाडा ही उपयोगी है इत्यादि ।

छे छेद सूत्रों कि सूची.

(१) श्री बृहत्कल्पसूत्र उद्देशा ६ जिसमे साधु साध्वीयोंका कल्प अकल्प बतलाया है दीक्षा लेते समय कीतना वस्त्रपात्र रखना ज्ञानके लिये अन्य गच्छमें जाना कषाय शीतलता इत्यादि वर्णन है.

(२) श्री व्यवहार सूत्र उद्देशा १०। मुनियोंके व्यवहारका उत्सर्गोपवादमार्ग, आलोचना लेने कि विधि आचार्यादिका योग न होतों श्री जिन प्रतिमाके सन्मुख भी आलोचना करना. पद्वियोग होनेसे आचार्यादि सात पद्वि देना. देनेपर भी अयोग हो तो संघ मील पद्वि छोडा भी सके. साधु साध्वीयोंको आचारांगसूत्र निशिथसूत्र भणीयों विनों आगवान

विहार--गोचरी--व्याख्यान--तथा वार्तालाप तक भी नहीं करना इत्यादि सविस्तार वर्णन है।

(३) श्री दशाश्रुत स्कन्ध अध्य० १० जिसे मुनियोंके असमाधि दोष, सबलदोष, गुरुकि ३३ आशातना, चितसमाधि स्थान, गणिकि आठ संप्रदाय, श्रावक साधु प्रतिमा, तीस महा मोहनियकर्म बन्ध स्थान, और नौ निदानका सविस्तार वर्णन है।

(४) श्री निशिथसूत्र उदेशा २० प्रत्येक उदेशाओंमें साधु साध्वीयोंके प्रमादादिसे लगे हुवे दोषों कि आलोचना तथा आलोचना करनेवाला--देनेवालाका वर्णन किया है उत्सर्गोपवाद मार्गका विशेष वर्णन है।

(५) श्री महा निशिथसूत्र अध्य० १३ जिस्मे पाचमारे कि कर्मलीला, आचार्य साधु साध्वी श्रावक श्राविकाओं नाम धारानेवालोंकि गति तथा पांचमारेमें एकावतारी होगें--कमलप्रभाचार्य--सुमतिनागल आदि विविध विषय उत्सर्गोपवादका विशेष वर्णन है।

(६) श्री नीतकल्पसूत्र- जिस्मे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, समयानुसार, मोक्षमार्ग साधन- आलोचना विषय साधु श्रावकोंके व्रतविशुद्धि ओघीक उपगृहीक उपकरणोंका वर्णन है समयानुसार मुनि मार्गका वर्त्तन विशेष है।

च्यार मूलसूत्रो कि सूची.

(१) श्री आवश्यक सूत्र अध्य० ६ जिसमें साधु

श्रावकोंके आवश्य करने योग्य प्रतिक्रमण सूत्र है. इनोंसे संबन्ध रखनेवाले अन्य विषय भी बहुत हे।

(२) श्री उत्तराध्ययन सूत्र अध्य० ३६ जिस्मे विविध विषय वैराग्यमय तथा ब्रह्मचर्य कि नौ वाड मोक्षमार्ग अष्टप्रवचन साधु समाचारी कपिलमुनि हरकेशीमुनि संयति--मृगापुत्र अनाथी- समुदपालादि ओर भी उच्चकोटीका मुनि मार्ग षट्द्रव्य, नवतत्त्व कर्मलेश्या जीवादिका प्रतिपादन अच्छा कीया है।

(३) श्री दशवैकालिक सूत्र अध्य १० जिस्में मुनियोंके आचार व्यवहार तथा भिक्षावृति आदिका वर्णन है।

(४) श्री ओघनिर्युक्ति सूत्र--जिस्में विविध विषय है मुनियोंको पात्रे कीतने प्रमाणवाले दंडा-- चदर चोलपटा उत्तरपटा आदि सबका प्रमाण है. तथा आहार विहार आदिका विस्तारसे वर्णन है। एवं ११-१२-१०-६-४ मीलके ४३

(४४) श्री नन्दीजी सूत्र--जिस्में पांचज्ञानका सविस्तार वर्णन है श्रुतज्ञानाधिकारे द्वादशांगीसे ले कें ७३ आगम औरं प्रकरणादिका सविस्तार वर्णन कीया है।

(४५) श्री अनुयोगद्वार सूत्र--जिस्में नय निक्षेप द्रव्य प्रमाण सामान्य विशेष अणुपूर्वी अनानुपूर्वी पच्छाणुपूर्वी छे भाव सात स्वर--तीन ग्राम इकवीस मुर्च्छना छे दोष आठ गुण याने संगीत विषयका अच्छा विवरण कीया है.

इन पैंतालीस आगमोंपर पूर्वाचार्योंने बडेही विस्तारसे निर्युक्ति टीका चूर्णी भाष्य वृति अवचूरी छाया टीपण और बालवबोध रचके जन समाजपर बडा भारी उपकार कीया है विशेष जैनागमोंमें नितीधर्म, गृहस्थधर्म, सदाचार, व्यवहार-शुद्धि, ७२ कलाओं, १४ रत्न, च्यार भावना, अहिंस्यादि धर्मके साथ सम्यक्त्वधारी राजा महाराजा सेठ सेनापतियों ने जिनमन्दिर-तीर्थोका जिर्णोद्धार-जिनप्रतिमा कि पूजा शासन प्रभावना शासनोन्नति करी जिस्का वर्णन तथा जैन श्रावक लोगोंने मन्दिर बनाया प्रभु पूजा प्रभावना सामायिक प्रतिक्रमण पौषद प्रतिमा धारण करी का वर्णन और जैन मुनियों तप संयम ज्ञान ध्यानमें आत्मकल्याण कीया उनोंका वर्णन है विशेष खुलासा तबही हो सके कि गीतार्थ मुनि अपने शिष्योंको आगमों कि वाचना दे तथा श्रावक वर्ग गीतार्थ गुरु महाराजों कि सेवा भक्ति कर सूत्र सुने. जो मनुष्य जन्म धारण कर जैन सिद्धान्तोंका आद्योपान्त श्रवण नही कीया है वह मानों अपना अमूल्य मनुष्य जन्मको निरर्थक ही खोके चला गया है " सुयरयणस्स दुलहा " आगमोंमें कहा है कि सूत्ररत्न मीलना दुर्लभ है.

सोचा जाणइ कलाणं, सोचा जाणइ पावयं ।
उभयपि जाणइ सोचा, जं सेयं तं समाचरे ॥ १ ॥

सेवंभंते सेवंभंते तमेवसच्चम् ।

खुश खबर.



(१) द्रव्यानुयोग द्वितिय प्रवेशिका कि. =) १०० नकलोंका रु १०) ५०० नकलोंका रु ४५) १००० नकलोंका रु ८०)

(२) विवाहचूलिका तथा वंगचूलिका कि. =) १०० नकलोंका रु. १०)

(३) भावप्रकरण तथा स्तवन संग्रह भाग ४ था भेट.

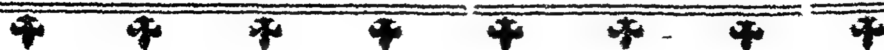
(४) बारहा सूत्रोंका हिन्दी भाषान्तर. रु. ४)

(५) शीघ्रबोध भाग १२ पुस्तकोंकि रु. ३)

(६) हिन्दी मेम्बरनामा रु. ०॥

१ पत्ता—श्री जैन युवक मित्रमंडळ.
मु. लोहावट-(मारवाड)

२ श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला.
मु० फलोधी-(मारवाड)

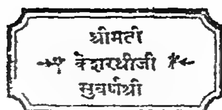


पुष्प नं. ८४.

प्राचीन छन्द गुणावलि प्रथम भाग.



सं०—मुनिश्री गुणसुन्दरजी.


श्रीमती
वैदरथीजी
सुवर्णश्री

जन्म वि० सं० १९३७ विजयदशमी.

जैन दीक्षा वि० सं० १९७२



ढुंढक दीक्षा वि० सं० १९६३.

मुनिराज श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज।

आनंद प्रि. प्रेस–भावनगर.

लोहावटसे प्राप्त.

श्री सिद्धसूरि सद्गुरुभ्यो नमः

अथश्री

प्राचीन छन्दगुणावलि

प्रथम भाग



समाहक—

मुनिश्री गुणसुन्दरजी (गंभीरमलजी)



द्रव्य सहायक,

५१) श्रीमान् केसरीमलजी पोकरणा

५१) मुत्ताजी पीरूलालजी चंदमलजी

मु:-पीसांगण (अजमेर)



प्रकाशक,

श्रीरत्नोदय ज्ञानपुस्तकालय—पीसांगण,

वीर स २४५३ — विक्रम स १९८३

प्रथमावृत्ति १००० — ओसवाल स २३८३

[मूल्य पठन पाठन मनन.]

गुण गंभीर परिचय

मारवाड–नागोर परगने हरिमा नामा ग्राम में ओसवाल ज्ञाति–रौंका शेठिया शाह भीमराजजी कि धर्म्मपत्नी तीजोवाई के पुत्र **गंभीरमलजी** ने करिवन् १५ वर्ष कि उम्मर में वावीस टोलो के साधुजी नथमलजी के पास स्थानकवासी दीक्षा लीथी करिवन् २२ वर्ष आप अज्ञातपणे उसी वेषमें रहे वाद आपके सुभाग्योदयसे बीलाडा में मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराजका समागम हुवा जैन सिद्धातोंमें जगह जगह जिन-प्रतिमाका अधिकार तथा जैनमुनियों के बोलते समय मुखवस्त्रिका मुंह आगे रखने का पाठ देखीये आपने सत्यता को स्वीकार कर मिथ्याकल्पित पन्थका त्यागकर वि. सं. १९८३ चैत वद ३ को बीलाडामें जैन संवेग दीक्षा धारण कर ली आपका नाम **गुणसुन्दरजी** रख मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी के शिष्य बनाये गये थे इस सुअवसरपर पीपाड, जैतारण सोजत खारि यादि के श्रीसंघ का आगमन होने से भगवानकी सवारी पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्यादि धर्म्म कार्य्य वहुत अच्छे हुए थे.

आपश्रीके कण्ठस्थ ज्ञान के अन्दर बहुतसे प्राचीन छंद भी हैं उन प्राचीन छन्दोंमें भगवान् कि भक्तिके सायही साथ इतिहासपर प्रकाश डालनेवालि भी वहुतसी घटनाएहैं अतएव उन छंदोको परमोपयोगी समज यह " प्राचीन छंद गुणावलि: " छोटीसी किताव छपवा के आप सज्जनों कि सेवामें रखी जाति है आशा है कि आप इस कितावको आद्योपान्त पढके अवश्य लाभ उठावेंगे।

कहनेकि आवश्यक्ता नहीं है कि इस प्राचीन छन्दों के अन्दर पूर्व महाकवि-योंकी कैसी कैसी चमत्कारी प्रसादी भरी हुइ है पर वह कीस कों प्राप्त होती हैं ? जो–कि शुद्धता के साथ पूर्ण विश्वास रख अटल नियम से सदैव स्मरण करनेसे ही मनोकामना पूर्ण होता है किमधिकम्

प्रकाशक.

श्री रत्नप्रभसूरीश्वरसद्‌गुरुभ्यो नमः

अथ श्री

प्राचीन छन्द गुणावलि प्रथम भाग.



प्रात स्मरणीय श्री चौवीस तीर्थंकरोंके नाम—श्री ऋषभदेवजी श्री अजीतनाथजी श्री सभवनाथजी श्री अभिनदनजी श्रीसुमतिनाथजी श्रीपद्मप्रभजी श्रीसुपार्श्वनाथजी श्रीचद्रप्रभजी श्रीसुबुद्धिनाथजी श्री शीतलनाथजी श्री श्रेयासनाथजी श्रीवासुपूज्यजी श्री विमलनाथजी श्रीअनतनाथजी श्रीधर्मनाथजी श्रीशान्तिनाथजी श्रीकुंथुनाथजी श्री अरनाथजी श्री मल्लिनाथजी श्रीमुनिसुव्रतजी श्री नमिनाथजी श्री नेमिनाथजी श्रीपार्श्वनाथजी श्री महावीरजी

नमो अरिहताण, नमो सिद्धाण, नमो आयरियाण, नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहुण, एसो पंच नमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो, मगलाण च सव्वेसिं, पढम होइ मंगलम् ।

गुरुवन्दन.

इच्छामि खमासमणो वंदिउ जावणिज्जाए निसीहिआए मत्थएण वंदामि यह पाठ मन्दिरमें ३ वार गुरुआगे २ वार उठ बेठके बोलना.

इच्छकार सुहराइ सुहदेवसि सुखतप शरीर निराबाध,

सुख संजम यात्रा निर्वातेहो जी स्वामि सुखसाता है भातपाणिका लाभ देनाजी । यह पाठ खडा रहके कहना बाद एक खमासना देना । फीर

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् अब्भुट्ठिओमि अभ्भितर देवसियं खामेउं " इच्छं " खामेमि देवसियं जंकिंचि अपत्तियं परपत्तियं भत्ते पाणे विणए वियावच्चे आलावे संलावे उच्चासणे समासणे अंतर भासाए उवरिभासाए जंकिंचि मज्झ विणय परिहीणं सुहुमं वा बायरं वा तुब्भे जाणह अहं न याणामि तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

श्री भगवान्के मन्दिरजीमें जानेवालों कों

शरीर व वस्त्रोंके पवित्रतासे हाथमें अक्षतादि शुद्ध द्रव्य ग्रहनकर तीनवार निसीहि पूर्वक मन्दिरजीमें प्रवेश कर भगवान् कि शान्तमुद्राके दर्शन होते ही हृदयमें आनंद लाता हुवा निम्न लिखत श्लोक बोलना.

दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनं ।
दर्शनं स्वर्गसोपानं दर्शनं मोक्षसाधनं ॥ १ ॥

अद्य मे सफलं जन्म । अद्य मे सफला क्रिया ।
शुभोदिनोदयोऽस्माकं जिनेन्द्र ! तव दर्शनात् । २ ।

प्रभु दर्शन सुख सम्पदा, प्रभु दर्शन नवनिध
प्रभु दर्शनसे पामिये सकल पदार्थ सिद्ध । ३ ।

जीवड़ा जिनवर पूजीये पूजाना फल जोय
राजा नमे प्रजा नमे । आण न लोपे कोय । ४ ।
भावे जिनवर पूजिये । भावे दीजे दान
भावे भावना भाविये । भावे केवलज्ञान । ५ ।

बाद तीनवार प्रदिक्षणा पूर्वक इरियावहि पडिक्कमके तीनवार बेठ उठके खमासमणा देके चैत्यवन्दन करना

चैत्यवन्दन.

ऋषभ अजित संभव नमु, अभिनंदन आनंद, सुमति पद्म सुपासजी, मेटो भवभय फंद १ चंदप्रभ सुबुद्धि बुद्धि, शीतल श्रेयांस जाण वासुपुज्य पूजो सदा, विमल अनंत गुण खाण २ धर्मशान्त शान्तिकरी, कुंथु अर मल्लि नाथ । मुनिसुव्रत पद सेवतां, करिये शिवपुर साथ ३ नमि नेम पार्श्वप्रभु, वीरशासन सरदार भूत भविष्य विदेहमें, वन्दन बार हजार ४ जे कारण जिनवर हुवा । ते लावो मुज आज, ज्ञानसुन्दर निर्मळचिते, सेवो श्री जिनराज ५

जंकिंचि नामतित्थ, सग्गे पायालि माणुसे लोए। जाइ जिण बिंबाइ, ताइ सव्वाइ वंदामि ॥ १ ॥

नमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं आइगराणं तित्थयराणं सय संबुद्धाणं पुरिसुतमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवर पुंडरियाणं पुरिसवर गंधहत्थिणं लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपइवाणं लोग-पजोअगराणं अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं

बोहिदयाणं धम्मदयाणं धम्मदेसियाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवर चाउरंत चक्कवट्टीणं अपडिहयवरनाणं दंसणधराणं वियट्ट-छउमाणं जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहियाणं मुत्ताणं मोअगाणं सव्वन्नूणं सव्वदरिसिणं सिव मयल मरुअ मणंत मक्खय मव्वाबाह मपुणराविति सिद्धिगइ नामधेयं ठाणं संपत्ताणं नमोजिणाणं जिअ भयाणं ॥ जे अ अईआ सिद्धा। जे अ भविस्संतिणागएकाले। संपइअवट्टमाणा। सव्वेतिविहेण वंदामि १

जावंति चेइआइं, उड्ढेअ अहेअ तिरिय लोएअ। सव्वाइं ताइं वंदे। इह संतोतत्थसंताइं ॥ १ ॥

जावंत केविसाहु। भरहेरवय महाविदेहेअ। सव्वेसिं तेसिं पणओ। तिविहेण तिदंड विरयाणं। १

नमोऽर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यः।

शान्तिजिन स्तवन.

(देशी असवारी की)

शान्तिजिन मुद्रा मोहनगारी। वारी जाउं वार हजारी शान्ति० टेर। सर्वार्थसिद्ध थकी चव आये. गजपुर नगर मझारी। विश्वसेन कुलचन्द्र कहीजे, अचरामात मल्हारी ॥ शान्ति १ ॥ मृग लञ्छन चालीस धनुष्यकी, कांचन बरणी काया। षट् खण्ड केरी छोडी साहबी, तपकर केवल पाया। शान्ति० ॥ २ ॥ नामसे मृगी रोग निवारी, मूर्ति लागे प्यारी। द्रव्यसे भाव निक्षेपाचारू। पूज रह्या नरनारी ॥ शान्ति ॥ ३ ॥ अन्तराय को डोरो तोडी, आज-

दर्शे मे पाया। रोम रोम हुलसायो म्हारो। आत्म गुण प्रगटाया॥ शान्ति० ॥४॥ दु ख दोहग तुम नामे जावे, सुख सम्पति कर आवे। सरण लहे जो शान्ति जिनेन्द्रको, अक्षयसुखको पावे ॥५॥ पतितपावन है विरुद आपको, असरण सरण जो दाखो। मुझ पतित को उद्धार करो प्रभु। चरणमरणमें राखो॥ शान्ति० ॥६॥ तु ठाकुर हुं चाकर थारो, महेर निजर अब कीजे। ज्ञानगुरु प्रगटे 'गुण' पुरण, गाभीर सुख कर दीजे ॥ शान्ति० ॥ ७ ॥

जय वीयराय जगगुरु होउ मम तुह पभावओ भयव। भवनिव्वेओ मग्गा–णुसारिआ इठफलसिद्धि ॥ १ ॥ लोगविरुद्ध-चाओ गुरुजणपूआ परत्थकरण च। सुहगुरुजोगो तव्वयण सेवणा आभवमखंडा ॥२॥ वारिज्जइ जइवि। निआ–णबधण वीयराय तुह समए। तहवि मम हुज्ज सेवा। भवे भवे तुम्ह चलणाणं॥३॥ दुक्ख क्खओ कम्मक्खओ। समाहिमरण च वोहिलाभो अ। सपज्जओ मह एअ। तुह नाह पणाम करणेण ॥४॥ सर्वमगलमागल्य। सर्व-कल्याणकारणं। प्रधान सर्वधर्माणां। जैन जयति शासनम् ॥५॥

अरिहत चेइआण करेमि काउस्सग्ग, वदणवत्तिआए पूअण-वत्तिआए सक्कारवत्तिआए सम्माणवत्तिआए वोहिलाभवत्तिआए निरुवसग्गवत्तिआए सद्धाए मेहाए धीइए धारणाए अणुप्पेहाए वड्ढ-माणीए ठामिकाउस्सग्गं ॥

अनत्थ ऊससिएण नीससिएण खासिएण छीएण जभाइ-एण उड्डुएण वायनिसग्गेण भमलिए पित्तमुच्छाए सुहुमेहिं अग-

संचालेहिं सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो जाव अरिहंताणं भगवंताणं नमोकारेणं न पारेमि तावकायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि ।

एक नवकारका काउस्सग्ग करके थुइ बोलना—

अष्टापद सिखरे शत्रुंजय गिरनार । आबु तारंगा व्यवहार गिरी मझार । राजग्रह चम्पा पावापुरी सुखकार । कृत्रिम चैत्यालय वन्दु वारम्वार ॥१॥ बाद यथाशक्ति पच्चक्खान करे इति चैत्यवन्दन ।

श्री अंतरिक पार्श्वनाथ–छन्द.

दोहा.

शारद मात मया करी । आपो अवचल वाण ।
पुरुषादाणि पास जिन । गाउं गुण मणि खाण । १ ।
अद्भुत कौतक कलयुगे । दीसे यह अचंभ ।
धरतिथी अधर सदा । अंतरिक थिर थंभ । २ ।
महिमा मही मण्डल सबल । अव्वल अनोपम आज ।
अवर देव सुत्ता सबे । जागे तुँ जिनराज । ३ ।
एक जिभ कर किम कहुँ । गुण अनंत भगवंत ।
कोड जिभा कर को कहे । तां ही न आवे अन्त । ४ ।
तुँ माता तुँही पिता । भ्राता तुँहीज बन्धु ।
मेहर करी मुझ उपरे । कर करुणा रस सिन्धु । ५ ।

(छन्द अडिवालि)

कर करुणा करुणा रस सागर। चरण कमल प्रणमे नर नागर।
निर्मल गुण मणि गुण वैरागर। सुर गुरु अधिक अछे मति आगर॥
काम कुम्भ जिम कामति दायिक। पद प्रणमे सुरनर नर नायिक।
मथित सुमन मथ दूर मथ पायिक। अष्ट कर्म रिपु दल बल घायिक॥
नव निधि ऋद्धि सिद्धि तुम नामे। मन वांछित सुख सम्पति पामे।
जे प्रभु पद पङ्कज सिर नामे। बहुला सुर महिला तसु कामे॥
बहुला वसे व्यवहारि प्रात। वर 'मिरपुर' वसुधा विख्यात।
ज्यां राजे जिनवर जग तात। अंतरिक अनोपम अवदात॥

(छंद त्रुटक)

अवदात जेहनो जगत जांणे। गुण वखांणे सुर धणि।
प्रासाद प्रभुनो प्रगट प्रभावे। पामिये प्रभु पद भणि।
महिमा वधारे विघ्न वारे। करे सेवा अति घणी।
तुम नाम लिनो रहे भिनो। अवर देव है अवगुणी॥१॥
नर नाथ कोडी हाथ जोडी। मान मोडी इम कहे।
प्रभु नाथ चरणे जिके मरणे। रहै ते परम्पद लहै।
अति जेह उत्कट विकट संकट। निकट न आवे तेह वलि।
भय अष्ट मोटा निपट खोटा। दूरथी जावे टली २॥२॥

(छंद हाटको)

जे रोग भयंकर कुष्ट भगंदर दुष्ट खयन खम खास।
दरस अंतरगल अने मल ज्वर विषम ज्वर जाय नास।

दीसे अति माठा वलि वर्णा चाठा नाठा जावे तेह ।
तुम दर्शन स्वामि शिवगति गामि चामी[1] सम कर देह ॥ १ ॥
जलनिधि जल गाजे प्रवहण भाजे वाजे वाय कुवाय ।
थर हर तिहां धूजे हरिहर पूजे किजे बहुल उपाय ।
मन मांही कम्पे हड हडई जंपे किणही कम्प न थाय ।
इण अवसर ध्यावे प्रभुने भावे पावे ते सुख ठाय ॥ २ ॥
झडके तरू डाला पावक झाला काला धूम कल्लोल ।
उच्छलता देखी जाय उवेखी पंखी पडे दंदोल ।
पंथी जन नासे भरिया सासे त्रासे ध्रुजे तेह ।
पडीया जिण ठामे प्रभुने नामे कुशले पामे गेह ॥ ३ ॥
फणिने आटोपे मणिधर कोपे लोपे जे वलि लीह ।
धसमसतो आवे देखी धावे लचकावे दो जीह ।
बीहे जन जाता देखि राता लोयण तसु विकराल ।
किवे गुण ज्ञाने प्रभुने ध्याने अहि थावे विसराल ॥ ४ ॥
पापे पग भरता हीडे फीरता करता अति उन्माद ।
गोटक जिम छुटे अति अकुटे लुटे निपट निषाद ।
वनमें जे पडीया चोरे नडिया अडवडिया आधार ।
इण अवसर राखे कुण प्रभु पाखे भाखे वचन उद्धार ॥ ५ ॥

(छन्द त्रुटक)

मयमत्त मयंगल अतूल बलधर जासु दर्शन भजए
केशरिसिंह अति अबीह मेह सम वड गजए

---

१ सुवर्ण—सोना.

विकराल काल कराल कोपे सिंह नाद विमुखए
सुख धाम प्रभुनो नाम लेतो तेह सिंह न ढुकए ॥ १ ॥
गुल्लालाट करतो मद झरतो कोप धरतो धायए
भर रोम रातो अतिह मातो अधिक उजतो आयए
घर हाट फोडे बन्ध तोडे मन मोडे नृप तणो
तुम नाम ते गज अज थावे वसी आवे अतिगणो ॥ २ ॥
रण माय खग वींडे पुरा लोह चूरा चूरए
गज कुम्भ भेदे सिम छेदे वहे लोहित पुरए
दल देख कम्पे दीन झंपे करे प्रबल पुकारए
तुम स्वामि नामे तीणे ठामे वरे जय जयकारए ॥ ३ ॥
भय अष्ट मोटा दुष्ट खोटा जेम गेठा चूरए
अश्वसेन घोटा तुम प्रसादे मन मनोरथ पुरए
मही माही महिमा वधे दिनदिन चन्द्रने सूरज समो
जसु जाप करतो ध्यान धरतो पास जिनेश्वर ते नमो ॥ ४ ॥

(छन्द अडिल)

छाय पडल झाल भव कापे । आपो तेज अधिकबल आपे ।
पन्नग पति प्रभुके प्रतापे । अविचल राज काज थिर थापे ॥१॥
पद्मावती परिचय वहुपुरे । प्रभु प्रसाद संकट सहु चूरे ।
अलवत अलगी जावे दूरे । लक्ष्मी घर आवे भरपुरे ॥ २ ॥
महि मण्डलनो मोटो देव । चौसठ इन्द्र करे तुम सेव ।
त्रिभुवन तारो तेज विराजे । यशःप्रताप जगत् में छाजे ॥३॥

केता देस कहु वलि नाम । प्रभु की कीर्ति जिणजिण ठाम ।
पुर पाटण संवहण ग्रामे । सुणतो नाम भविक सुख पामे ॥४॥

(छन्द त्रुटक)

अङ्ग वङ्ग कलिङ्ग मरूथर मालवो मरहटए
कश्मीर हून हम्मिर हवस सवालख सोरठ ए
कांगरू कोकण दमणदेशे जपे तोरो जापए
इणदेशे अवचल प्रबल प्रतापे पार्श्व प्रगट प्रतापए ॥ १ ॥
वलि लाटने करणाट कन्नड मेदपाट मेवातए
नाहड धार वैराट वाघड । वच्छ कच्छ कुशलातए
सतिलंग गंग फीरंग देशे जपे तोरा जापए
इण देश अवचल प्रबल प्रतापे पार्श्व प्रगट प्रतापए ॥ २ ॥
वल औड तौड सगौड द्रीवड चोड नट महा भटए
पंचालने वंगाल चवस सवर ववर कोटए
मूलतान मागध मगध देशे जपे तोरो जापए
इणदेश अवचल प्रबल प्रतापे, पार्श्व प्रगट प्रतापए ॥ ३ ॥
नमि आड लाड कुनाल कोशल, वहुल जंगल जाणिए
खुरशान रोम इरान् अरब तुरक बरन् वखांणिए
कुरु अच्छ मच्छ विदह देशे जपे तोरा जापए
इण देश अवचल प्रबल प्रतापे पार्श्व प्रगट प्रतापए ॥ ४ ॥
काशी केरल अने कैकइ सूरसेन सडंभए
गंधार गुर्जर गाजणीवलि आड गुंड विद्रवए

---

१ इतने देशोंमें उस समय जैनधर्म फैला हुवा था ।

अवीर ने सोवीर देशे जपे तोरा जापए
इणदेशे अवचल प्रवल प्रतापे पार्श्व प्रगट प्रतापए ॥ ५ ॥
नैपाल नाहाड अमल कुन्तल अङ्गल कङ्गल देशए
प्रतिकाल चीलण सिंह मरकट सिन्धुदेश विशेषए
खास खान चिन सलुनदेशे जपे तोरा जापए
इण देश अवचल प्रवल प्रतापे पार्श्व प्रगट प्रतापए॥ ५ ॥
कणवीर कानड कुलख काबुल बुलकमंग विमंगए
मल्हार मधुहलार हरमच प्रचंगु हिंगलु मंगए
वल वासथाने दरसाणदेशे जपे तोरा जापए
इणदेश अवचल प्रवल प्रतापे पार्श्व प्रगट प्रतापए ॥ ७ ॥

(छन्द छप्पय)

प्रतापे प्रवल प्रताप पाप संताप निवारण ।
दहदिशीदेश विदेश भ्रमति भविजन सुखकारण ।
रोग शोग सवि टले मीले मनवंछित भोगए
दोहग दुःखदालिद्र दूर टले सब वियोगए
स्वर्ग मृत्यु पतालमें त्रिभुवनमें प्रगट्यो सदा
पार्श्वनाथ प्रताप तुझ आपो अवचल सम्पदा ॥ १ ॥

(छन्द हाटकी)

अवचलपद आपे थिर कर थापे जगव्यापक जिनराज ।
उपद्रव सब जावे सुरगुण गावे वस थावे नर राज ।
दिपे प्रदिपे रिपुने जीपे दीपे जिम दिनराज ।
पद पङ्कज पूजे प्रभुना रीजे सिझे वंछित काज ॥ २ ॥

तुँ छे मुझ नायक हुँ तुझ पायक लायक तुँ भगवान्
कुण छे जगमांहि साहिब बाही राखे आप समान
तुँहीज ते दिसे हैयडे हींसे विश्वावीसे हैव
देखुं हुँ नयने जपुं वयणे निर्मलगुण तुम देव ॥ २ ॥
सिंदूर सुढाला मदमत्तवाला धुंधाला दरवार
झूले मनगमता रंगे फीरता उच्छालंतो बार
तुरकि तेजाला आगलपाला झूजारातरवार।
झालिने घोडे होडाहोडे जोडे बहु परिवार ॥ ३ ॥
हयवर पाखरिया रथ जोतडिया घुंगरना घमकार।
सोवन चितरिया नेजाधरिया परवरिया असवार
गज बेठा चाले रिपुने शाले माले लक्ष्मीसार
एहवी ऋद्धि पामे प्रभुने नामे सफल करे अवतार ॥ ४ ॥

छन्द

अवतार सार संसार मांहि। जेह नरनो जाणिये,
धन कमाइ धर्म्म स्थाने। जिणे लक्ष्मी माणिये ॥१॥

दोहा—सुन्दर रूप सुहामणो श्रवण सुणि नर नार,
कोडी कर जोडी रहे दर्शनने दरबार ॥ १ ॥

(छन्द भुजंगी)

प्रीयंगु वन निल तन देख मन मोहिए
सनूर नूर नूर ते अधिक ज्योति सोहिए
अमन्द चन्द बृन्द ते कला कलाप दीपए
सुरेन्द्र कोटी कोटी ते जिनेन्द्र जोर जीपए ॥१॥

अमूल फूल वान ते कवान तो न लगए
दुर्योद्ध क्रोध योद्ध वैरी मान छोड भगए
अदीन तुँ सदीन वन्धु देहि सुक्ख मगए
सरण जाए स्वामिके चरणको विलगए ॥२॥

सुज्योति मोती जोती ते सुदन्त पंति दीपए
गुलाल लाल ओष्ट ते परवाल लाल जीपए
सुवास श्वास वास ते कर्पुर पुर भजए
प्रलंब लब बांहु ते अनाल नाल लजए ॥३॥

अनुप रूप देख के जिनेन्द चन्द पासए
पदारविंद वन्दते कुव्याप पाप नसए
दालिद्र दूर चुरके प्रभु पुर मोरी आशए
अनाथ नाथ देही हाथ करी सनाथ दासए ॥४॥

(छन्द)

कमट हट गंजनो कुकर्म्म मर्म भंजनो
जगत् निति रंजनो मद द्रुम प्रभंजनो
कुमति मति भंजनो नयन युग्म खंजनो
जगत् त्रीय अगंजनो सो जयो पास निरंजनो ॥१॥

दोहा

पास ए निज दासनी—अवधारो अरदास
नयने देखाडी दर्श पुरो पूरण आश ॥१॥

चकवा चाहे चित्तसो दिनकर दर्शन देव
चतुर चकोरी चंद जीउ हुं चाहुं नित्य मेव ॥२॥
निशिवर सुत्ता निंदमें दीठो दर्शन आज
प्रत्यक्ष देखाडी दर्श सफल करो मुझ काज ॥३॥
तुम दर्शन सुख संपदा तुम दर्शन नव निधि
तुम दर्शनथी पामिये सकल मनोरथ सिद्धि ॥४॥

(छन्द)

अंतरिक प्रभु अंतरजामि दिजे दर्शन शिवगति गामि
गुण केता कहिये तुम स्वामि कहतो सरस्वती पार न पामि ॥१॥
कीयो छन्द मति मदज सारू हितकर चित्तमें धरजो वारू
बालक यद्वा तद्वा जो बोले माताने मन अमृत तोले ॥२॥
कीयो कवित चित्तने हुलासे संभल तो सब आपद नासे
सम्पति सघली आवे पासे भावविजय भक्ते इम भासे ॥३॥

(छन्द छप्पय)

कीयो आनंद वृन्द मन मांही आणि
सांभलतो सुख कन्द चन्द जीम शीतल वाणि
श्री विजयदेव गुरुराज आज तसु गणधर गाजे
श्री विजयप्रभ नाम काम सब स्वरूप विराजे
गणि दोय प्रणामि करी थुणियो पास असरण सरण
भावविजय वाचक भणे जयो देव जय जय करण ॥१॥



श्री पार्श्वनाथ भगवानकी निशानी.

(महा प्रभाविक और अनेक चमत्कार गर्भित यह प्राचीन निशानी है)

सुख संपत्ति दायक सुरनर नायक, प्रतिख पास जिनंदा है ।
जांकी छवी क्रान्ति अनोपम ओपत्त, दीपत तेज दिनंदा है ।
मुख ज्योति जीगा मीग जीगमीग जीगमीग पूनम पूर्ण चंदा है ।
सबरूप स्वरूप बखानत भूप, तुं त्रिभुवन आनंदा है ॥ १ ॥

करुणारस सागर मीले बहु नागर जिनका यशः फूलंदा है ।
तेरी खुश खिदमत करते एकचित्त, सेवक तो धरणिंदा है ।
तो जलती आग निकालानाग, कीया बड़भाग सुरिंदा है ।
तुम्ह चरणे आया रक्षा लपटाया, कला अति केल करंदा है ॥२॥

एकदिन महारनी वनपंचाग्नी, तापस ताप तपंदा है ।
फल फूलों आहारी दुद्धों धारी, अल्प आहार लहंदा है ।
सब वेश सन्यासी रहे उदासी, अवन्यासी ध्यावंदा है ।
दिस चारो दीहि वले अगीहि, सूरज ताप सिकंदा है ॥ ३ ॥

महिमा वधारी सब नरनारी, ज्यापे आय नमदा है ।
एसी सुन वर्चो धरी उक्कर्तो, पुत्ता पास जिनंदा है ।
वामा दे अरखे कुणतो पक्खे, मेरी हुंम पुरदा है ।
त्यां चालो पुत्ता ज्यां अवधूत्ता, योगारम्भ जगंदा है ॥ ४ ॥

जननी मन आशा पुरण पासा, एरापति सजंदा है ।
गल घूघरमाला नाण हेम्मला, दंताला ओपंदा है ।

वर वीर घंटाला मद मत्तवाला, अंबाडी खसंदा है ।
पंचरंगी पक्खर सज्जे सक्खर, ढालोसे ढलकंदा है ॥ ५ ॥

धधकारे धत्ता वल मत्ता पत्ता, अंकुश सिस दयंदा है ।
गङ्गातट आये जनसहु पाये, प्रभु ज्ञानी आखंदा है ।
रे रे अभिमानी तप अज्ञानी, पावक जीव जलंदा है ।
तब लकड फाडे कीये बीफाडे, देखाया नागेंदा है ॥ ६ ॥

नवकार सुनाया सुरपद पाया, तापस यशः घटंदा है ।
तिण कीया नियाना तप खजांना, कोडी सट वेचंदा है ।
होयके क्रोधातुर धूरसे आतुर, कमठासुर उपजंदा है ।
अश्वसेन सुत्ता वांमापुत्ता, विषय दुःख जांण तजंदा है ॥ ७ ॥

पञ्च मुष्ठि लोच कीया आलोच, मनसे सोच अफंदा है ।
प्रभु अप्रतिबन्धा विहार करंदा, तब वनवास वसंदा है ।
उवसग्ग अथगा रहे काउसग्गा, कमठासुर दाव लहंदा है ।
वडा असुरांणा करे हराणा, पीछाण विलोक धूकंदा है ॥ ८ ॥

कर अतिशय क्रोध विचार विरोध, महा अभिमान धरंदा है ।
वाउल मत्तवालि निलि कालि, वायु महा वजंदा है ।
रजकीरणो कोटी रही गज ओटी, दीवाकर तेज छीपंदा है ।
करी घोर घटा विकटा उमटी ओरावों जीउ गाजंदा है ॥ ९ ॥

घराटों घाटों सुणिया थाटों, एरापति लाजंदा है ।
हुवा अकाला धुर वरसाला, जल चाला खीवंदा है ।

नहीं कोइ पारा मुशलधारा, लुबाँसु वरसदा है ।
चाले जल खाला नदी नाला, हेमाला इलकदा है ॥ १० ॥

दरियाव उलंटा के सर फूटा, पाणि नहीं मावदा है ।
दिग्पाल घहलों धरी उथलों, खोणिपति खीसद है ।
वडे पाहाडों जंगी झाडों, मीजाडा डाहंदा है ।
समुदोइदी वेल चलदी, जाणक जग रेलदा है ॥ ११ ॥

बहु चामर घुठा जाणके रूठा, झूठा मन असुरंदा है ।
नेवीमसा राया वनमें पाया, काउस्सग्ग करंदा है ।
उपसर्ग हदा कोइ करदा, पाछा नहीं मुडदा है ।
धर मनमें ध्यान क्रोध न मानं, निश्चल ध्यान धरंदा है ॥ १२ ॥

प्रभु नाशा ताइ नदियों आई, तांइ नहीं खोमंदा है ।
देवगिरि जमी धीरप ऐसी, पानस पीड सहंदा है ।
तीण अवसरवरदा धरणि वरदा, आसन वेग चलदा है ।
तब अवधि प्रजुजी दीठा प्रभुजी, तन मन सब हुल संदा है ॥१३॥

हाँयके हेराना नेठ निमाना, पायों आय पडदा है ।
फण नाग हजारों कर निस्तारों, छत्र ज्यों सिम धरंदा है ।
ले अपण खन्धे प्रेम निबेडे, पूर्व प्रीत पालंदा है ।
इन्द्राणि नारी मन शृंगारी, यौवन अंग जलकदा है ॥ १४ ॥

रंका पति वर्णा मृगा नयणी सुन्दर रूप शोभंदा है ।
अणियाला कजल जलके विजल, खुन वनाव वणंदा है ।

नकवेसर नथा लालसुकथा, विच मौती लहकंदा है ।
ओडण पाटाम्बर जीणा अंबर, आभूषण जलकंदा है ॥ १५ ॥

उर कांचू कसियों तन उल्लसियों कामघटा दीपंदा है ।
पेहरण वन खुंबा हरियालुंबा बाजु कर सोभंदा है ।
कटी मेक्खल कडियों सोवन जडियों विच हीरा चमकंदा है ।
घमके घुघरियो झांझण चंरियो पग नेवर रणकंदा है ॥ १६ ॥

ले झांझर तालो ताल कंसाला पक्ख वाजा वाजंदा है ।
कुहके करनाला विच रसाला जंगी ढोल ढलकंदा है ।
वाजे सुरनाई संघर धाई नकारा घुरंदा है ।
पोमावई तुठा आंण उलंठा नाटक आण नाचंदा है ॥ १७ ॥

थथा थई थावे जिन गुण गावे डंडा रस भेद रमंदा है ।
दिन तीन वितिता तांही नचित्ता, पावस जल्ल वरसंदा है ।
धरणिपति जाणि ज्ञान पीछाणी कमठासुर कोपंदा है ।
नागेंद्र पति आंख्यो रती कती रीस आवंदा है ॥ १८ ॥

रे मूढा धिट्ठा चित्त विणट्ठा तुं क्यों नहीं सरमंदा है ।
प्रभु बलवंता जोर अनंता तुं तो नहीं जाणंदा है ।
ये क्षमासागर गुणके आगर तीनों लोक नमंदा है ।
अशात खमाई रीस भराई हाकाइ वरजंदा है ॥ १९ ॥

कीधी बहु गहलों पडी दहलों धड धड देह धूजंदा है ।
धरणेंद्र डराया तब समजाया पायो आय पडंदा है ।

कर जोड खमाया सिम नमाया जग नायक जिणचंदा है ।
तुं साहिब सच्चा तो गुण रच्चा मेरी हुंस पुरदा है ॥ २९ ॥

कमठासुर कीत्ति बहु विनति निज अपराध खमंदा है ।
सुरपति सिधाये निज घर आये प्रभुके गुण स्मरंदा है ।
शुद्ध संयम पाले दोष निहाले तब केवल उपजदा है ।
सम्मेतसिखर गिरि चढके उपर सिद्धपुरी पहुचंदा है ॥ २१ ॥

तु सचा रखे भेद परक्खे तुं मानी गोडंदा है ।
तु अन्तर जामी तुं बहु नामी तु माया मोडंदा है ।
तुं देवाना तुं खुमाणा तुं मोजा मकरंदा है ।
तुं अल्ला पीर फकीर मुशाफर तुं योगी तुं जिंदा है ॥ २२ ॥

तुं काजी मुल्लां मर्द अव्दलों तुंही मेक्ख फीरदा है ।
तुं इउ पाया धंधे लाया मायामें सुलकंदा है ।
तुं भुडा बाला सदू मत्तवाला तु पाका बाजंदा है ।
तुं कचा कोहला मबते झोला ममामद झरदा ॥ २३ ॥

पाया गुम्सांइ भेदन काई भीड पड्या आवदा है ।
तुं नारायण योग परायण माधव तुंही मुकुदा है ।
तुं केवलधारी तुं अवतारी तुं देवो देवंदा है ।
तुंहे को थापे एक उत्थापे थिति निज थापंदा है ॥ २४ ॥

केई देवल सजा लौक श्रीमज्ञा मीरणियो वाटदा है ।
गुण गीत पयासे कीर्ति भासे झीणे स्वर गावदा है ।

कालागर अगर शुभ मल्लियागर धूपेडा धूकंदा है ।
कुंकुम कस्तुरी केसर पूरी चंदण से चरचंदा है ॥ २५ ॥

सरवा मचकुन्दा फूलों हंदा भोडर विच ठवंदा हैं ।
चम्पा गुलावा मरिया छावा परमल त्यां वासंदा है ।
खस बोही चंगी रची अंगी फूलो विच फावंदा है ।
सुरत सोहंदी मूर्त्ति हंदी दीठा नयन ठरंदा है ॥ २६ ॥

तेरी वली जाउ मोंजो पाउ विनंति सुणंदा है ।
सिद्धादा खासा त्यां रही वासा, दो सेवक विनवंदा हैं ।
क्या कहुं तुं सासे तुं सहु भासे तोसे मन उलजंदा है ।
घर घर निशानी पास वख्यानी गुण 'जिनहर्ष' कहंदा है ॥२७॥

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ स्वामिका छन्द.

(त्रुटक छन्द)

जय जय जग नायक पार्श्व जिनं, प्रणिताऽखिलमानव देव गनं ।
शंखेश्वर मण्डन स्वामि जयो, तुम दर्शन देखि आनंद भयो ॥१॥

अश्वसेनकुलाम्बर भानू लभं, नव हस्त शरीर हरित्त प्रभं ।
धरणिन्द्र सुसेवित पाद युगं, वर वा सुर कान्ति सदा सुभगं ॥२॥

निज रूपभि निर्जितरंभपति, वदनद्युति शारद सौम्यअति ।
नयनांबुजद्युतिविशाल तला, तिल कुशम स्नेह वन स प्रवरा ॥३॥

रसनामृत कन्द समान सदा, दन्तावलि अनारीकुली सुखदा ।
अधरारूण विद्रुम रंग घनं, जय शंखपुराधिप पार्श्वजिनं ॥४॥

अति चारू मुकुट मस्तक दीपे, काने कुण्डलरवि शशि जीपे ।
तुझ महिमा मही मण्डल गाजे, नित्य पंच शब्द वाजा वाजे ॥५॥

सुर नर किन्नर विद्याधर आवे, नर नारि तोरा गुण गावे ।
तुझ सेवे चौसठ इन्द्र सदा, तुझ नामे नावे कष्ट कदा ॥६॥

जे पूजे तुझने भाव गणे, नव निधि घर थावे तेह तणे ।
अड वडियों तुं आधार कह्यो, समर्थ साहिब में आज लह्यो ॥७॥

दुःखियों सुखदायक तुं दाखे, अमरणाने सरणे तुं राखे ।
तुझ नामे संकट विकटटले, वीच्छडिया प्रीतम आनिमीले ॥८॥

नट विट लंपट दूरे नासे, तुझ नामे चोर चरड त्रासे ।
रग रावल जे तुझ नाम थकी, वम होवे सघला प्रभु सेव थकी ॥९॥

यच राचस किन्नर ने उरगा, करी केसरी दावानल विहगा ।
यड बन्धन भय सघला जावे, जो एकमने तुझने ध्यावे ॥१०॥

भूतप्रेत पिशाच छली न मके, जगदिश तरा विधि जाप थके ।
मंहगा जोटिंगा रहे दूरे, दैत्यादिकना तु मद चूरे ॥ ११ ॥

सायणि डायणि जायहटकि, भगवन्त सदा तुझ भजन थकी ।
कपटि तुजनाम लिया कम्पे, दुर्जन मुखथी जी-जी जंपे ॥१२॥

मानि मच्छराला मुँहमोडे, ते पण आगलथी कर जोडे ।
दुर्मुख दुष्टादिक तुँ ही दमें, तुँझ नामे मोटा म्लीच्छ नमे ॥१३॥

तुझ नामे माने नृप सवला, तुम यशः उज्जल जिम चन्द्रकला ।
तुम नामे पामे ऋद्धि घणि, जय जय जगदीश्वर त्रिजगधणि ॥१४॥

चिन्तामणि काम गवि पामें, हय गय रह पायक तुम नामें ।
जनपद ठकुराई तुँ आपे, दुःखिया जनना दारिद्र कापे ॥१५॥

निर्धनने तुँ धनवन्त करे, तुँ तुठां कोठार भण्डार भरे ।
घर पुत्रकलित्र परिवार घणे, ते सहु महीमा तुम नाम तणे ॥१६॥

मणि माणक मोती रत्न जडया, सोवन भूषण बहु सुघड घडया ।
वलि पहरन नवरंग वेसघणा, तुम नामे कोइ न रह कमणा ॥१७॥

वैरि विरूवा नवि ताक सके, वलि चौर चुगल मनथी चमके ।
छल छेद्र कदा कोइ नवि लागे, जिनराज सदा ज्योति जागे ॥१८॥

ठग ठाकुर सहु थर हर थरके, पाखण्डि फणि नवि को फरके ।
लूंटादिक सहु नाशी जावे, मार्ग तुम्म जपतो जय थावे ॥१९॥

जड मूर्ख जो मति हीन वलि, अज्ञान तिमिर तसु जाय टली ।
तुझ स्मरणथी डाह्या थावे, पण्डित पद पामि पूजावे ॥२०॥

खस खास खयन पीडा नासे, दुर्बल मुख दीनपणो भासे ।
गड गुंबड कुष्ट जीके सबला, तुझ नामे रोग समे सगला ॥२१॥

गहला गुंगा बहिरा जीके, तुम्म नामे गत दुःख थाय तीके ।
तन कान्ति कला सुविशेष वदे, तुम स्मरण सोवन सिद्धि सद्धे ॥२२॥

करि केसरी अहि रण बन्धभया, जल जलण जलोदर अष्ट थया ।
रोगणि प्रमुख भय जाय टली, तुम नामे पामे रंग रली ॥२३॥

ॐ ह्रीं श्रीं अरहं पास नमो, नमिउण जपंतो दुष्ट दमो ।
चिन्तामणि मंत्र जके ध्यावे, त्यां घर दिन दिन दोलत थावे ॥२४॥

त्रीकरण शुद्धि जे आराधे, तस यशः कीर्त्ति जगमें वाधे।
वलि कामित काम मनी सादे, समहित चिन्तामणि तुझ लाधे ॥२५॥

मद मच्छर मनथी दूर तजे, भगवन्त भलिपर जेह भजे।
तस घर कमला कील्लोल करे, वलि राजरमणि वहु लील वरे ॥२६॥

भयवारक तारक तुँ त्राता, सज्जन जनने गति मतिनो दाता।
माय ताय सहोदर तुं स्वामि, शिवदायक लायक हितगामि ॥२७॥

करूणा कर ठाकुर तुँ मेरो, निशिवासर जाप जपुं तेरो।
सेवक पे परम कृपा कीजे, वालेश्वर वंच्छीत फल दीजे ॥२८॥

जिनराज सदा तुं जयकारी, तुझ मूर्ति अति मोहनगारी।
गुर्जर जनपद माहे राजे, त्रिभुवन ठकुराइ तुझ छाजे ॥२९॥

इम भाव भले जिनवर गायो, वामा सुत देखी सुखपायो।
रवि शशि मुनि संवत्सर रंगे, जय देवसूरि महा सुख संगे ॥३०॥

जय संख पुराधिप पार्श्व प्रभो, सकलार्थ समीहित देही विभो।
बुद्धि हर्ष रूचि विजयाय सदा, जय लब्धि रूचिः सुखायसदा ॥३१॥

श्री ऋषभजिन स्तुति.

(सफल ससार अवतारए हु गीणु)

त्रिभुवन नायक ऋषभजिन म्हारो, सुयशः सांभली मन उमग्यो म्हारो। तीरण तारण नहीं कोइ तो सारखो, पुहवी मध सोधीने में लह्यो पारखो ॥ १ ॥ वलि सुनो आदि जिन म्हारी विनती, तुम सेना वीका लह्यो नित त्रिनीती। त्रिकरण शुद्ध एक वार तोसे कीयो, हीव विशेष करी हरखीयो मुझ हीयो ॥ २ ॥ भगवंत

म्हारे तुंहीज साहिब भलो, तुं किम लेखवे नहीं मोसु तीलो। विरुद धरो बीयो चाल बीजी चलो, पुच्छसु में पण जाव पकडी पलो ॥ ३ ॥ धरी सहुंनी दया महाव्रत पहलो धरो, अरि हणि नाम अरिहंत किम उच्चरो। व्रत बीजुं धरी मृषावाद तजवा वलि, तुंही कहे वात अणदीठी अण सांभली ॥ ४ ॥ दाखवे कोइ लिये नहीं अण दिये, लालची तुंहीज परतणा गुण लिये। जाण नव वाड शुद्ध शीलव्रत जोगवो, पांच अन्तराय हणि भोग सहु भोगवो ॥ ५ ॥ घर परिग्रह तजी किध इच्छा घणि, सहस चोरासी शिष्य तीन लख शिष्यणि। मुख कहे कोइ सेवक नहीं म्हारे, अणहुते कोड एक देव सेवा करे ॥६॥ नयन निरखो नहीं श्रवण नहीं सांभलो, अंश पण जिभ थकी स्वाद नहीं अटकलो। कीण ही इन्द्रिय करी कांही जांणो नहीं, तांही सर्वज्ञनो विरूद धारो सही ॥ ७ ॥ क्रोध अलगो करी कीध कोमल हियो, किण विधि काम रिपु हणी दवट कीयो। किजे नहीं मान उपदेश एवो कही, नेट तुं कीणहीने शिस नमे नहीं ॥ ८ ॥ कपट नहीं तो केइ भक्त किम भोलवो, अवगुण पारका देखी किम ओलवो। किणीय वाते करी लोभ जो न करो, वरि तीन रत्न ते किम यत्ने धरो ॥ ९ ॥ भिक्षु अनगार निज नाम मन शुद्ध भणो, तीन गढ छत्र त्रिण राज त्रिभुवन तणो। वचनगुप्ति वलि नाम वाचीयमो, योजन गाम सुणजे चारो गमो ॥ १० ॥ कनक आसन अरोह कहो अकिंचण, विजवे सुरवलि चमरने विजण। सुमत तीजी धरो तोंहीज शुद्धायति, पास राखो नहीं

ओघों न मुहपति ॥ ११ ॥ पर भणि कहे मत थाओ प्रमादिया, कांइ राइ प्रायश्चित आप वलि न किया । जाव हिसाबनी युक्त सब जाणमो, अवर मेहर वलि मो पर आणसो ॥ १२ ॥ बहु मुख बोले तो लोक निंदा लहै, केवलि होय कर चौमुख तु कहै । भला भला भव्य ते साच कर सरद है, यश तणि रात जाया तीके यश लहै ॥ १३ ॥ प्रकृति म्हारी काइ छे पापणी, ओछी अधिकी मही नहीं मकुं आपणि । ध्यान हीवे म्हारो तुहीज माथे धणि, वडी म्हारी क्षमा वात तीण सहु वणि ॥ १४ ॥ अवगुण म्हारो ते सहु अवगुणि, भगवंत देव सेवक करो मो भणि । स्वामि सेव्यो निजयहर्ष सोभागणि, वृद्धि वलि थाय जिन धर्म्म वृद्धन तणि ॥ १५ ॥

(कलश)

इम विलस श्री अरिहत पदनि धन्य जग गुरु जग धणि ।
सिद्ध हुवा वलि आपरूपी जाव न दीये पर भणि ।
इम गुण प्रशंसा मांही नंदा काही जाणो आपणी ।
आपजो अमने शिव रमणि येहीज अर्ज धर्म्मसिंह तणि ॥ १ ॥

श्री पार्श्वनाथका छंद

सकल सम्पत श्री पार्श्व तणि, पुरवे मन वन्छीत आश गणि ।
हु तुझ विनवु स्वामि पुहुवी धणि, वर कृपा करो मुझ भक्त वणि ॥१॥
सुरपति सेवे नित्य पय कमला, संसार समुद्र तारण कुशला ।
गुणभूषण निर्मल गग जला, स्वामि निल वर्ण तनु कमलदला ॥२॥

मन्दिर थिर थावे बहु कमला, वलि सिद्धि बुद्धि थावे विपुला।
पसरे कीर्ति अति तसु धवला, पामे वर रमणि राज इला ॥ ३ ॥
शुभ मंगलमाल लहे विपुला, वलि हय गय रह पायक बहुला।
सहजे सुख लहे नर भव अचला, चिरंजीवी मानव भव सफला ॥४॥
वले विनयंती गमति महिला, सुत सुन्दर शोभित रूप वला।
जे दिनदिन वाधे अधिक कला, सबल शरीर वलि अतूला ॥५॥
दुर्जन चण्ड प्रचण्ड दला, जे भूत प्रित व्यंतर विकला।
डायणि सायणि करत छला, पार्श्व नाम नासे सगला ॥ ६ ॥
विषधर विष सब दूरा जासे, जुर दुष्ट ज्वरा न आवे पासे।
तुम नामे भय सगला नासे, वसुधरा तसु आंगण वासे ॥ ७ ॥
संकट चूरे जल थल विसमे, प्रभु महिमा देश विदेश रमे।
वलि रोग शोग सब दूर गमे, सबल अरि आय पाय नमे ॥ ८ ॥
तुम नाम चिन्तामणि काम गवी, तुम सुरत मोहन वेलि नवी।
तुम तुठे लहे सुरवर पदवी, तुम सम वड देव न को पुढवी ॥९॥
ए पार्श्व नाम जो हृदय धरे. ते स्वर्ग मोक्ष सुख लील वरे।
पोमावइ रक्षा तास तणे, श्री विजयसेन मुनि एम भणे ॥ १० ॥

श्री पार्श्वनाथ स्तवन.

(ख्याल की देशी)

धन्य भाग्य हमारा दर्शन कीनारे पार्श्वनाथका ध० टेर। पद्मासन युत् मोहन मूर्त्ति, देखी मन हरषायो, त्रीकरण योग करी थीर आतम, चरणोमें लपटायो हो ध० ॥ १ ॥ मस्तके मुगट विराजे सुन्दर, कानो कुंडल सोहे। केसरकि अंगियो रचीसरे,

देखीत मनडो मोहे हो ध० ॥ २ ॥ इतना दिन अंतराय दर्शकी, रह्यो आपमे दूरो। चिंतामणि मन मोहन स्वामि, अब मोय आशा पुरो हो ध० ॥ ३ ॥ डोफाइ में डुब गयो सरे, खोटे मार्ग खुब। जहा देख्या वहा मायाचारी, कहा जाय पाइ चूब हो। ध० ॥ ४ ॥ उगणीमे वैयामी चैतवद, तीज वार है बुद्ध। गुणसुन्दर कहै 'ज्ञान' कृपामे, पायो मार्ग शुद्ध हो ध० ॥ ५ ॥—

शासनपति श्री वीरभगवान् स्तवन.

(देशी असवारी)

वीर तोरा शासनकी बलीहारी, वारी जाउ वार हजारी। वीर ॥ टेर ॥ राय सिद्धार्थ त्रिमला रानी क्षत्रिकुण्ड नगर मझारी। चैत शुक्ल तेरसने जन्म्या, सुख पाया नरनारी ॥ वी० ॥ १ ॥ सुतिका आदि कर्मज कीना। छप्पन दिगूकुमारी, चौसठ इन्द्र सुमेर गिरिपर। महोत्सव कीयो सुखकारी। वी० ॥ २ ॥ सिंह लंच्छन प्रभु सिंह समाना, एकाकी संयमधारी। तप करतां केवल प्रगटायो। एकाकी वरी शिवनारी। वी० ॥ ३ ॥ सौधर्म आदि पाट परम्परा, हुवा धर्मके धारी। आगम ग्रन्थ निर्युक्ति टीका, भाष्यचूर्णी विस्तारी। वी० ॥ ४ ॥ लब्धिसंपन्न इह नलि और, शासन सेवा सारी। इन्द्र नरेन्द्र फणिन्द्र सेवित, जैनधर्म्म जयकारी। वी० ॥ ५ ॥ भूमि मण्डित जिनालयोंमे। केइ जीर्णोद्धार कारी। आगम लिखाय भण्डार भराया। केइ धर्म्म प्रचारी। वी० ॥ ६ ॥ रत्नोंका स्थान समुद्र जैसा। तुझ शासन हितकारी। बिम्ब दीठो अति लागे मीठो, ज्ञान गुरु 'गुण'कारी वी० ॥ ७ ॥

॥ श्री रत्नप्रभसूरि स्तुति ॥

महिन्द्रचूड़ घर जनमिया, लक्षमिकुक्ष निधान । कुलभूषण विद्याधरा, रतन रत्न समान ॥ १ ॥ दिक्षा शिक्षा उरधरी, सूरीपद गणाधीश, चौदपूर्व श्रुतकेवली, महीयल विचरे मुनिश ॥ २ ॥ अतिशय तेज अखंड यश, भव्यजन सुधारत काज । उपकेश पट्टन आविया, तारण भवजल जहाज ॥ ३ ॥ मंत्रीसुत विषधर ग्रह्यो, वासक्षेप विष निवार; पँवार नृप जैनी भया, तीन लक्ष चौरासी हजार ॥ ४ ॥ गौत्र अष्टादश स्थापीया, जैन धर्म जय-कार रत्नप्रभसूरि नमुं, दिनमें वार हजार ॥ ५ ॥

पुजो रत्नसूरी महाराज मोक्षकी राह बतानेवाले पूजो० ॥
नगर ओशीयां आये, सबको जैनी आप बनाये ।
जिन्होंका वंस ओश थपाये, गौत्र अठारे बनानेवाले पूजो० १
जगतारण गुरूराज, सुधारो भक्तोंके सब काज ।
शरणे आयेंकी रखो लाज–दुःख सब दूर हटानेवाले पूजो० २
तुम हो दीनदयाल, करीये सेवककी प्रतिपाल ।
मीटा दो कर्मोंका जंजाल, 'ज्ञान'को अमर बनानेवाले पूजो० ३

सच्चायिका देविकी स्तुति.

सान्नध साचल माततणी, घर चतुरंग लक्ष्मी होय घणी ।
सुख सम्पति वुद्धि वधे वमणी, उएश्यां मूर्त्ति अजब बणी ॥ १ ॥
घन केसर चन्दन कुसुमकलि, नव नैवेद्य ढोहै अधिकवली ।
गुण गावे सुहागण सकलमिली, इम पुज्यां पूरवे रंगरली ॥२॥

समरिजे जो मचियाय सदा, तसु विघ्न न व्याधि होय कदा ।
मनवञ्छित पुरवे मात मुदा, सेवो मचाय सदा फलदा ॥ ३ ॥
भव संकट योग वियोग हरे, परदेशे समर्यां पास फिरे ।
भक्तां घर ऋद्धि भंडार भरे, सेवंता सघला काज सरे ॥ ४ ॥
हय गय रथ पायक सुभटतणा, वर पुत्र कलित्र पंट्टर घणा ।
सौभाग्य वधे जग सहस गुणा, गुण हेम कहे सचायतणा ॥ ५ ॥
सचीयाय माय साची सदा, ध्यान अहोनिश ध्याइये ।
नरसिंघ कहे मानसुख, पुजनका फल पाइये ।
महेरकर माता, ओसीयागढकी इश्वरी ।
सेवगने दे माता, जोति वगम जगदीश्वरी ॥ ६ ॥

बाललग्नका नतीजा.

मेरा मा बाप ने रे मुझको बालपने परणाया–मेरा० टेर । दश वर्षकी उम्मर मेरी, सोलह वर्षकी लाया । स्कूलमें उस्ताद मारते, घर जोरू धमकाया ॥ मेरा ॥ १ ॥ मुहल्लामें दोस्त सतावे, देखो पागल आया । छोटी उम्मरमें सादी करके । जोरू बडी घर लाया ॥ मेरा ॥ २ ॥ दोय साल सादीको हो गइ, जीउ जीउ छीजती काया । विद्या मेरी नष्ट भई है । कैसा फन्द लगाया ॥ मेरा ॥ ३ ॥ क्या करू में कहांपर जाउं, छोडुं धन सब माया बाल विवाह मत्त करना कोइ । मेरा काल अब आया ॥ मेरा । ॥ ४ ॥ बाल सभा इम कहे आपको, सुनो भजन यह गाया । बाल विवाह अब बन्ध करावो, इस ने दाग लगाया मेरा ॥ ५ ॥

पंचो की स्तुति.

पंचो खुब मचाई रोल न्यात के मांयने जी, मेटी धर्म्म कर्म्म की रीत अकल विसरायने जी ॥ टेर पंचो ॥ सुनजो पंच चौधरी सारा । अब में पटम उघाडुं थांरा । सुता अंधकार के मांह दीवो बुजाय के जी ॥ पंचो १ ॥ छोडी न्याय करण की रीत, छागइ अंधा धूध अनीत । दिया जुलमि माथे चाड, पछकर जायने जी ॥ पंचो २ ॥ थांरा घरका सुनो हवाल, लुगायों गावे फाटी गाल, मार्ग चलती लोग हसावे गीत सुनाय के जी ॥ पंचो ३ ॥ चाल्यो पाखण्डियोंने फन्दो, टुटे न्यात जात को बन्धो, ले गइ परम्परा की चाल, नदी वहाय के जी ॥ पंचो ४ ॥ वड गया न्यात जातमें खरचा, चाली कम करने की चर्चा, पण नहीं थे तो चेंतो हाल नींद के मांयने जी ॥ पंचो ५ ॥ बेट बाल-पणमें व्यचो, बेठियो वुढाने परणावो, थांरा अवगुन करू व्ययान के चोडे लायने जी ॥ पंचो ६ ॥ खोटी रीत कहुं एक थारी, कहतां छाती फाटे मारी, नाचे विवहा मांयने नारी ढोल वजाय के जी ॥ पंचो ७ ॥ राखो विना सार तकरार, तकता फीरो पराइ नार । आखर पीस्तासो मनके माय स्यांन गमाय के जी ॥ पंचो ८ ॥ थां में मोटी पड गई खोड, पकडो पुच्छ गधा को दोड, आच्छी भुंडी सोचो नांयक ध्यान लगाय के जी ॥ पंचो ९ ॥ उठीयो पंचायती को धारो, मीठ गयो काण कायदो सारो, कही हाल हकीकत थारी मोहन गायके जी ॥ पंचो १० ॥ इति—



खुश खबर.

जिस किताबकी आप सज्जन बहुत अरसोंसे इन्तजारी कर रहे थे जिस किताबके लिये हमारे पास सैंकडो पत्र आजाते थे जिस किताब की जैन समाजमें परमावश्यकताथी वह किताब " जैन जाति महोदय " छपनी प्रारंभ हो गई है जिसका पहला दूसरा प्रकरण थोडे ही स्वल्प समय में आप कि सेवामें भेजा जावेगा शेष प्रकरण जैसे जैसे तय्यार होते जावेंगे वैसे वैसे खबर आपकि सेवामें भेज दी जावेगी हालमें तय्यार पुस्तक—

(१) पञ्चप्रतिक्रमण सूत्र और विधी पर्वादिके चैत्यवन्दन स्तुतियों स्तवनों सज्झायों स्मरण स्तोत्रादि परमोपयोगी विषयो- पक्का कपडाका पुट्ठा बढीया कागज सुन्दर छपाई ग्लेजपेपर [illegible] साइज २२४ पृष्ट इस नमूना कि एक वह ही पुस्तक है।

(२) जैन जाति निर्णय प्रथम द्वितीयाङ्क जिसमें [illegible] जातियों उपजातियोंका निर्णय कीया गया है।

पत्ता—श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला.
मु:—फलोदी (मारवाड)

श्री जैन मित्रमंडल मु:—पीपाड (मारवाड)

श्री जैन ज्ञानप्रकाश मण्डल मु:—बीलाडा (मारवाड)

श्री ज्ञानप्रकाश मण्डल रूण मु:—खजवाना (मारवाड)